**पावन मुनि दीक्षा एवं मंगल वर्षायोग-
उदयपुर शहर (2005) की मधुर स्मृति में
प्रकाशित**

धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान

लेखक

वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

प्रकाशक

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)
धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर) ग्रंथाङ्क - 30

संस्करण - तृतीय - 2005
प्रतियाँ - 1000
मूल्य - 71.00/- रुपये
मुद्रक - जैन प्रिन्टर्स, उदयपुर फोन : 2425843

द्रव्यदाता / ज्ञानदाता

नारायण सेवा संस्थान,
''सेवाधाम'' सेवानगर हिरण मगरी, से. नं. 4
उदयपुर - 313002 (राज.)
फोन - 91 - 249 - 2462301, 242305
मोबा. 935215047, 9352506192

अक्षर रचना (कंपोजिंग) :- क्षुल्लक सच्चिदानंद (संघस्थ आ. कनकनंदी जी) एवं निशा सिंघवी, कलाजी गोराजी, उदयपुर (राज.)

दुःखियों के दर्द से द्रवित होकर - बेमिसाल संस्थान का निर्माण

*** 'आंसू बन गये फूल'**

सच्ची सेवा प्रभू पूजा है, उत्तम यज्ञ विधान है।
दरिद्र नारायण बन आता है, कृपा सिंधु भगवान् है॥

इन्हीं भावों को संजोकर गायत्री यज्ञ के बीच 23 अक्टूबर 1985 को कैलाश 'मानव' की प्रेरणा से संस्थान की स्थापना हुई।

''सेवा शौक की धुन'' कैलाश 'मानव' ने मई 1976 पिण्डवाडा के पास हुई भयंकर बस-ट्रक भिड़न्त में पायी।

दुर्घटना स्थल की स्थिति देखकर मन पसीज गया ... घायलों को कराया भर्ती .... प्रतिदिन जाने लगे हॉस्पीटल जाने के क्रम ने दी - सेवा शौक की नींव .....

इस नींव पर सेवा भवन निर्माण कार्य तब तेजी से होने लगा जब ... अक्टूबर 1985 के दिन ..... भूखे किसना भील से सामना हुआ हॉस्पीटल में ... किसना भील को जब दी भोजन की थाली ..... पर उसने पूरा खाना नहीं खाया ..... क्योंकि उसकी गरीब स्थिति के कारण उसके परिजन भी थे भूखे ..... दो रोटियाँ रहने देने का कारण जब किसना भील से समझे कैलाश 'मानव' तब उनकी आँखे हुई गिली .... दुःखी हृदय से लिया संकल्प ''हॉस्पिटल में रोगियों को भोजन खिलाने का .....

घर-घर में रखे खाली पीपे .... पीपों में एक-एक मुट्ठी आटा डाला जाने लगा .. उससे प्रातः चार बजे उठकर साधु मानव की धर्मपत्नी कमला देवी अग्रवाल पडोसी महिलाओं के साथ रोटी व कढी बनाती थी ..... अपने कुछ सहयोगी साथियों के साथ कैलाश 'मानव' हॉस्पीटल में भोजन ले जाते साईकिल पर रखकर।

सरकारी कर्मचारी रहते हुए उन्होंने खाली समय का सदुपयोग किया।

अच्छे काम का संकल्प लिए आगे बढे कैलाश 'मानव' को सहयोग मिलता गया ... सहयोगी हाथों में मुख्यतः चैनराज जी लोढा, पी. जी. जैन, डॉ. आर. के. अग्रवाल व राजमल एस. जैन संस्थान के प्रेरणा स्रोत बने ..... चैनराज जी लोढा ने पोलियो विकलाङ्गों के लिए कैलाश 'मानव' द्वारा देखे गये स्वप्न को साकार किया। 1995 में पोलियो हॉस्पीटल बनवाकर ... सेवा प्रकल्प जुडते गये .... सेवा परिवार बढता गया ... जिसमें देश-विदेश में संस्थान की 387 शाखाओं के साथ हजारों साधकों के हाथों द्वारा सेवा कार्य संचालित किए जा रहे हैं।

घसीट-घसीट कर आये 44500 से अधिक पोलियो विकलाङ्गों के भाग्य को बदला संस्थान ने सफल ऑपरेशन द्वारा ... विकलाङ्गों के क्षेत्र में किए गये उत्कष्ट सेवा कार्य हेतु सन् 2000 में **''राष्ट्रीय पुरस्कार''** से गौरव को प्राप्त किया संस्थान ने... संस्थान के पास सेवा कार्य के संचालन हेतु दो भवन है - 1) सेवाधाम 2) पोलियो

हॉस्पीट्ल

सेवा धाम द्वारा सम्पूर्ण संस्थान सेवा प्रकल्पों को संचालित किया जाता है। इस भवन में मुख्य आकर्षण का केंद्र - ''सेवा सिद्ध पीठ'' है। दूसरा भवन 151 बेडका ''चैनराज सावंतराज लोढा पोलियो हॉस्पीट्ल'' है। इस भवन में ऑपरेशन थीयेटर, एक्सरे, लेब, कैलीपर्स वर्कशॉप, टी. वी. - वी.सी.आर. प्रशिक्षण केंद्र, मंदबुद्धि बच्चों हेतु रहत संस्थान, कम्प्यूटर प्रशिक्षण, फिजियो थेरेपी सेंटर व जिला विकलाङ्ग पुनर्वास केंद्र भी है। जिनके द्वारा पोलियो विकलाङ्गों को निशुल्क सुविधायें प्रदान की जाती है।

संस्थान का मुख्य उद्देश्य यही है कि ''पीड़ित मानवता की हर प्रकार से सेवा करना'' ..... भारत में ही नहीं अपितु विदेश में वर्ष 1990 में इंटरनेशनल कम्युनिटी एज्युकेशन एसोसिएशन एशिया रिजन द्वारा मलेशिया में आयोजित सम्मेलन के एक्सपिरियन्स एन्ड स्ट्रेट्रेजी ऑफ कम्युनिटी एज्युकेशन फॉर द ट्राईबल्स विषय पर प्रवचन प्रस्तुत कर संस्थान ने सेवा कार्य की अलख जगाई।

ये सेवा का दीप घर-घर पहुँचे इस हेतु साधु कैलाश 'मानव' भारत भर के चैनलों पर सेवा प्रवचन द्वारा दु:खियों व असहायों को सहायता देते हैं।

विभिन्न सेवा कार्यों द्वारा अब तक संस्थान ने आदिवासियों में 89,80,000 वस्त्र, 3,85,100 बीमारों का इलाज, रोगियों में 7416 बस्ते वितरित किए, वनांचलों में 20 बालसंस्कार केंद्र, 30 सिलाईप्रशिक्षण केंद्र, डे-केयर सेन्टर द्वारा वरिष्ठनागरीक होते हैं यहाँ आनंदीत।

विकलाङ्गता के क्षेत्र में - 36,700 कैलिपर्स, 45,325 बैसाखियाँ, 39,660 ट्रायसाइकल्स नि:शुल्क वितरित कर विकलाङ्गों को चलाया अपने पाव। पावों से चलाने के प्रयासों के साथ साथ गृहस्थ जीवन भी निभायें विकलाङ्ग इस हेतु संस्थान ने 34 विकलाङ्ग जोडों का विवाह सम्पन्न कराया .....

हमारे देश के बाल गोपालों में कैन्सर अपना घर न करें इस हेतु अखील भारतीय स्तर पर 12 बार व्यसन मुक्ति रथ यात्रायें भी निकाली। अब तक कुल 1856 सेवा शिविर संचालित कर दु:खियों के आसु पोछे संस्थान ने....

राज्य व राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त नारायण सेवा संस्थान को कई पुरस्कारों से नवाजा गया .... संस्थान पुरस्कारों को अपनी एक और जिम्मेदारी मानकर सेवा कार्य की ओर अधिक बढ जाती है।

''तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा'' के भावों को संजोकर .... पुन: नई शक्ति के साथ संस्थान सेवा कार्य करती है प्रतिदिन ..... संस्थान ने अपना मूल मंत्र ही बना लिया है - चरैवेति ..... चरैवेति .....

आमुख

''स्व में स्थित हो जाना, लीन हो जाना, रम जाना ही स्वास्थ्य है।'' इसलिए स्वास्थ्य जीव की स्वाभाविक प्राकृतिक अवस्था है। स्व से विचलित हो जाना, च्युत हो जाना, बिखर जाना अस्वास्थ्य होने से जीव की अस्वाभाविक, अप्राकृतिक-विकृत/विकार अवस्था ही अस्वास्थ्य है। समस्त शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक या अधिभौतिक, अधिदैविक अथवा जन्म, जरा, मरण रूपी विकार अवस्थाओं से पूर्ण रूप से निवृत्त होकर ''सच्चिदानन्द'' या ''सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्'' स्वरूप निज प्राकृतिक-सहज-नित्यानन्दमय निराकुल, अजर-अमर-अक्षय अमृतावस्था की उपलब्धि ही यथार्थ से परम स्वास्थ्य है। परंतु अविद्या, कुसंस्कार से प्रेरित होकर यह मोही जीव सहज प्राकृतिक अवस्था को त्यागकर मन-वचन-काय से अप्राकृतिक आहार-विचार-उच्चार-आचार करने से आधि-व्याधि, उपाधि रूपी विकारों से विकृत होकर अस्वस्थ अवस्था को प्राप्त होकर आकुल-व्याकुल होता है।

''वत्थु सहावो धम्मो'' अर्थात् वस्तु का अपना प्राकृतिक भाव ही धर्म होने से परम स्वास्थ्य ही जीव का धर्म है एवं अप्राकृतिक, अस्वस्थ भाव ही अधर्म है। स्वास्थ्य अपना धर्म होने से प्रत्येक जीव का परम कर्तव्य एवं पवित्र अधिकार है- स्वास्थ्य को प्राप्त करना। अस्वास्थ्य जीव का अपना धर्म न होने के कारण अस्वस्थ अवस्था में आकुलता-व्याकुलता प्राप्त होती है। इसलिए प्रत्येक जीव का प्रधान एवं प्रथम कर्तव्य है कि अस्वस्थता को साधिकार पूर्वक स्वयं से दूर हटाये।

परम स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए जो परम पुरुषार्थ (धर्म) किया जाता है, उससे परम स्वास्थ्य के साथ-साथ लौकिक (शारीरिक, मानसिक) स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है। जैसे - कृषक अनाज प्राप्त करने के लिए कृषि करता है तो घास-फुँस-पुआर स्वंयमेव प्राप्त हो जाता है अथवा एक व्यक्ति ने 100 मील की यात्रा की तो 10 मील की यात्रा स्वयमेव ही हो जाती है। इसलिए परम पुरुषार्थ अर्थात् धर्म केवल परोक्ष भूत परलोक तथा आत्मा के लिए हितकारी नहीं है परंतु इहलोक तथा तन, मन, धन, जन के लिए भी हितकारी है। धर्म अन्धानुकरण, मिथ्या परम्परा, रुढि नहीं है। धर्म से सर्व प्रकार की उन्नति, सुख, शान्ति की उपलब्धि होती है। कहा भी है **''धर्म: सर्व सुखा करो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वन्ते''** अर्थात् धर्म सब प्रकार के सुख को देने वाला, हित को करने वाला होने से हे ज्ञानी जन! धर्म का संग्रह करो।

The path of religion is the path of peace and happiness.

धर्म का मार्ग, सुख एवं शांति का मार्ग है।

धर्म के लिए परिशुद्ध मन चाहिए एवं परिशुद्ध मन के लिए परिशुद्ध शरीर तथा

आहार चाहिए। यथा -

"Healthy mind in a healthy body." Or "A sound mind in a sound body." "Our Body is what we eat." "Diet cures more then doctors."

सारांश यह है कि शुद्ध आहार-विचार-आचार-उच्चार-स्वास्थ्य ये सब परस्पर अनुपूरक-परिपूरक हैं। इनमें से एक के लिए भी अन्य की नितान्त आवश्यकता है। इसमें से एक में भी असन्तुलन पैदा होने से अन्य में भी असन्तुलन पैदा हो जाता है। वर्तमान में व्यस्त भौतिक सुविधावादी जन उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर आचरण किए बिना असन्तुलित जीवनयापन करते हुए केवल औषधि की शीशी में स्वास्थ्य को ढूँढ़ते हैं, जैसे कस्तुरी-मृग कस्तुरी की सुगन्धि बाहर से ढूँढ़ता है परंतु कस्तुरी जो स्वयं की नाभि में है उसका पता ही नहीं है। उसी प्रकार स्वास्थ्य हमारे अन्दर में ही है। यदि हमारे आहार-विहार, आचार-विचार, उच्चार में उसका भान ही नहीं है, तो स्वास्थ्य को बाहर ढूँढ़ने से कैसे मिल सकता है? अत: प्रत्येक स्वास्थ्यकामी व्यक्ति को दृढ़ संकल्प एवं इच्छाशक्ति से समस्त अप्राकृतिक आहार-विहार-विचारादि को अत्यंत सादर, साग्रह से अस्वीकार करना पड़ेगा। जो पशु-पक्षी प्राकृतिक रूप से जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं, वे सभ्य कहलाने वाले मनुष्य से अधिक स्वस्थ एवं सुखी हैं। गुणग्राही, अनुकरणप्रिय मनुष्य को उनसे यह सहज प्राकृतिक जीवन प्रणाली की शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्य प्राकृतिक संरचना दृष्टि से शाकाहारी है। मांसाहार मनुष्य के लिए अस्वाभाविक आहार है। मांस, मद्य, मछली, अण्डा, धूम्रपान आदि तामसिक आहार होने के कारण यह आहार मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा में विकार उत्पन्न कर देता है जिससे मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है अत: मनुष्य को उपर्युक्त भोजन स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य रूप से वर्जित है। मनुष्य जब तक प्रकृति की गोद में पुन: वापिस नहीं आयेगा, तब तक उसको प्राकृतिक स्वास्थ्य की उपलब्धि नहीं होगी। वर्तमान मनुष्य प्रकृति से दूर होकर कृत्रिम जीवनयापन करने के कारण विभिन्न रोगों का शिकार होता जा रहा है। कृत्रिम जीवन यापन करते हुए, विभिन्न रासायनिक औषधियों के सेवन करते हुए जब मानव सर्वत्र अशांति ही अशांति का अनुभव करने लगा, तब वह पुन: सहज सरल प्राकृतिक जीवन यापन की ओर फिर मुड़ने लगा है। यह मनुष्य समाज के लिए शुभ सूचक है। हमने शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संतप्त मानव को देखकर उसकी शांति के लिए धार्मिक, दार्शनिक, आयुर्वेदिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस "धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान" नामक पुस्तक की रचना की है। इसमें विभिन्न दृष्टिकोणों से, सरल-सहज उपायों से किस प्रकार स्वास्थ्य का संपादन करते हुए मनुष्य चीर सुखमय जीवनयापन कर सकता है उसका वर्णन किया गया है। इसका अध्ययन करके इसमें वर्णित मार्ग पर चलते हुए यदि नर-नारायण को सुख एवं शांति की उपलब्धि होती है, तब मेरा परिश्रम सार्थक होगा। पुन: "आप लोगों की स्वास्थ्य की अमोघ कुंजी, आप लोगों की

इच्छा शक्ति तथा आपके शुद्ध आहार, विहार, विचार, आचार, उच्चार में निहित है" कहते हुए आप लोगों को जागृत होने के लिए आह्वान करता हूँ।

लेखक के अन्तरङ्ग से (तृतीय संस्करण)

धर्म शाश्वतिक, सार्वभौम, सर्वसुखकारक, सर्वजीव सुखकारी, सर्वजीव हितकारी होने से धर्म का क्षेत्र, प्रभाव, उपयोगिता सदा-सर्वदा-सर्वत्र है। धर्म केवल कोई निश्चित बाह्य क्रिया-काण्ड, रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, वेश-भूषा आदि नहीं है। धर्म से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक सुख मिलता है। धर्म से किसी भी तरह के विपरीत साइड इफेक्ट नहीं होता है भले वह साइड इफेक्ट शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय या वैश्विक क्यों न हो। क्योंकि धर्म वस्तु का स्वभाव है, प्रकृति का नियम है, स्वत:सिद्ध सिद्धान्त है। ऐसे महानतम सिद्धान्त के शोध-बोध, आविष्कार, प्रचार-प्रसार, प्रयोगकर्ता भारतीय महापुरुषों ने आध्यात्मिक स्वास्थ्य के सहकारी, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी अनेक महान् सिद्धान्तों का शोध-बोध, प्रचार-प्रसार एवं प्रायोगिककरण किया जिसे आयुर्वेद कहते हैं। वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धान से आयुर्वेद को श्रेष्ठ पद्धति रूप में स्वीकार्यता मिलती जा रही है। ऐसे महानतम आयुर्वेद का यत्किंचित् समन्वयात्मक वैज्ञानिक पद्धति से इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। इसलिए इस पुस्तक की जैन-जैनेतर सामान्य व्यक्तियों से लेकर आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए बहु-उपयोगी सिद्ध हुई है। मेरे अधिकांश साहित्य देश-विदेश के दि.जैन, श्वे.जैन, हिंदू, इसाई, रा.स्व. संघ, हृदय परिवर्तन आन्दोलन, वितरागवाणी ट्रस्ट आदि प्रकाशित करते हैं, अध्ययन करते हैं।

इस तृतिय संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण का अर्थभार "नारायण सेवा संस्थान" ने किया है। इस पुस्तक की अक्षर रचना (कंपोजिंग) संघस्थ क्षुल्लक श्री सच्चिदानंद जी एवं सूश्री निशा सींघवी, उदयपुर ने की है। नारायण सेवा संस्थान, संस्थापक, सचिव, कैलाश अग्रवाल "मानव" तथा यहाँ के कार्यकर्ता, संस्थापदाधिकारी आदि पीड़ित, विकलाङ्ग मानवों को नारायण मानकर उनकी सेवा तन-मन-धन-समय-श्रम से संलग्न है। यह कार्य धर्म का एक सच्चा, व्यापक, जीवन्त स्वरूप है। यहाँ पर सम्पूर्ण जाति, मत, पंथ, राष्ट्र, राजनीति की संकीर्णताओं से दूर कार्य हो रहा है जो कि अहिंसा, सेवा, विश्वमैत्री, विश्वप्रेम का ज्वलंत उदाहरण है। ऐसे कार्यों के लिए सब की समग्र सहायता की आवश्यकता ही नहीं विधेय भी है। मेरा उपर्युक्त समस्त महानुभवों को तथा विश्व के समस्त प्राणियों को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए मंगलमय आशीर्वाद।

आचार्य कनकनंदी जी
उदयपुर (राज.) 24-8-2005

विषय - सूची

परिच्छेद **पृष्ठसंख्या**

1) **स्वास्थ्यप्रद दिन-चर्याविधि** 10
विरुद्ध भोजन की विष तुल्यता, दूध के विरुद्ध फल और धान्य, दुग्ध विरुद्ध शाक, दिन रात का विवेचन, आचार पालन का परिणाम।

2) **चर्याविधि के विशेष वर्णन** 21
दन्त धावन, दांतून करने के अयोग्य मनुष्य, तेल घृताभ्यंग गुण, अभ्यंग के लिए अयोग्य व्यक्ति, व्यायाम के गुण, व्यायाम के लिए अयोग्य व्यक्ति, बलार्धलक्षण, उद्वर्तन के गुण, विशिष्ट उद्वर्तन के गुण, पवित्र स्नान के गुण, स्नान के लिए अयोग्य व्यक्ति, जूता पहिनने व पादाभ्यंग के गुण, रात्रि चर्याधिकार-मैथुन सेवन काल, मैथुन के लिए अयोग्य व्यक्ति, शरीर पर तेल मर्दन से लाभ, कान में तेल डालने से लाभ, पाद में तेल मर्दन से लाभ, सिर में तेल मर्दन से लाभ, स्नान से लाभ, स्नान के जल, स्नान के अयोग्य व्यक्ति, स्नान के अंतर की क्रिया, विभिन्न वस्त्रों के विभिन्न लाभ, सुगंधित द्रव (उबटन) लेपन से लाभ, पुष्प माला धारण करने से लाभ, अलंकार धारण करने से लाभ, रत्नालंकार से लाभ, पैदल यात्रा के गुण, जीवों की स्वाभाविक आवश्यकता, आहार का योग्य समय एवं क्षेत्र, आहार करने योग्य बर्तनों (पात्रों) के लक्षण।

3) **स्वास्थ्य साधन** 34
शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्, मुनियों को आयुर्वेद शास्त्र की आवश्यकता, आरोग्य की आवश्यकता, रोग का कारण-पूर्वोपार्जित पाप कर्म, कर्म का पर्यायवाची नाम, रोगोत्पत्ति के मुख्य कारण, प्राकृतिक चिकित्सा, स्वास्थ्य प्राप्ति का उपाय - सदाचार एवं सद्विचार, मानसिक औषध, तनाव, स्वास्थार्थे धर्ममाचरेत्, दस तरह का पाप कर्म, स्वास्थ्य की संक्षिप्त शिक्षा, स्वास्थ्य का भेद, परमार्थ स्वास्थ्य लक्षण, व्यवहार स्वास्थ्य लक्षण, साम्य विचार, बल परीक्षा, बलोत्पत्ति के आन्तरङ्ग कारण, बलवान् मनुष्य के लक्षण, महाभारत में वर्णित स्वास्थ्य विज्ञान।

परिच्छेद **पृष्ठसंख्या**

4) **वेगावरोध से रोग तथा उसका प्रतिकार** 52
वेगावरोधन निषेध, अधोवायु के अवरोध से रोग, मलवेग को रोकने से रोग, मूत्रवेग को रोकने से रोग, मूत्रवेग रोकने से उत्पन्न रोगों का उपाय, डकार रोकने से रोग, छींक रोकने से रोग, प्यास रोकने से रोग, भूख रोकने से रोग, निद्रा रोकने से रोग, खांसी रोकने से रोग, श्वास रोकने का रोग, जंभाई रोकने से रोग, आंसू रोकने से रोग, वमन रोकने से रोग, वीर्यस्खलन के वेग रोकने से रोग, असाध्य रोग, वेगरोध जन्य रोगों में कर्त्तव्य, रोकने योग्य वेग, वातादि मलों का यथा काल शोधन।

5) **मनोवैज्ञानिक चिकित्सा** 58
आयुर्वेद के अनुसार मानसिक तनाव से रोग, अभिघातज ज्वर, अविचारज ज्वर, अभिशापज ज्वर, अभिशङ्गज ज्वर, काम ज्वर लक्षण, भयादिजन्य मागन्तुक ज्वर, कामशोक भयाद्वायु, आगन्तुक ज्वर में दोषानुबंधता, उन्माद का सामान्य हेतु, उन्माद, उन्माद का सामान्य रूप, अपस्मार रोग के कारण, आध्यात्म से रोग मुक्ति, भाव परिष्कार : सही उपचार - उदाहरण 1 (प्रायश्चित्त), एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा विधि - उदाहरण 2, उदाहरण 3, क्रोध से बुढापा, उदाहरण 4,5- दुषित मनोभाव से परभव में रोग, श्रीपाल का महान् उदार भाव, आयुर्वेद के अनुसार कुष्ठ रोग का कारण।

6) **सच्चारित्र से आरोग्य** 78
सम्पूर्ण स्वास्थ्य के मूल मंत्र।

7) **स्वस्थ मन : स्वस्थ शरीर** 89

8) **स्वास्थ्यप्रद आहार** 97
पेयापेय पानी के लक्षण, जल का स्पर्श व रूप दोष, जल का गंध, रस व वीर्य दोष, जल का पाक दोष, जल शुद्धि करने की पद्धति, जल शुद्धि विधान, मांसाहारी झगडालु होते हैं, मस्तिष्क पर आहार का प्रभाव।

9) **शाकाहार चिकित्सा** 108
साग-सब्जी खाइयें रोग दूर भगाइयें, कैन्सर से बचने के लिए मांसाहर छोडे, शाकाहार स्वास्थ्य वर्धक, अण्डे से सावधान -

परिच्छेद		पृष्ठसंख्या
	बीमारियों को बुलावा न दे, अण्डों के तत्त्व, अण्डे खाने से नुकसान।	
10)	**चिकित्सापरामर्श**	118
11)	**सिद्धौषध**	122
	ज्वर रोगी की चिकित्सा, अतिसार की चिकित्सा, वृष्ठियों की चिकित्सा, प्रमेह की चिकित्सा, राजयक्ष्मा की चिकित्सा, श्वास और कास की चिकित्सा, श्वास तथा हिक्का की चिकित्सा, शोध की चिकित्सा, वात रोगी की चिकित्सा, हृदय रोगी, हिक्का रोगी की चिकित्सा, अर्श (बवासीर) की चिकित्सा, मूत्रकृच्छ की चिकित्सा, तृष्णा रोग की चिकित्सा, उरुस्तंभ रोग की चिकित्सा, विसर्प रोग की चिकित्सा, नासा रोग की चिकित्सा, दांतों के मजबूत, शिरोरोग की चिकित्सा, कर्णशुल की चिकित्सा।	
12)	**सर्वरोगहर औषधि**	127
13)	**नानारोगहर औषधियाँ**	132
14)	**मंत्ररूप औषध**	135
	मंत्र संजीवन कर सिद्धयोग, अभिरुचि रोग की औषधि, अपस्मार की औषधि, कुष्ठ रोग की औषधि, वातरोग हर औषधि, गर्भपात का निरोध।	
15)	**तम्बाखू एक: अनर्थ अनेक**	140

-: स्वास्थ्यामृतम् :-

जिस प्रकार शरीर के लिए भोजन से भी अधिक पानी एवं पानी से भी अधिक प्राणवायु की आवश्यकता है उसी प्रकार शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए योग्य भौतिक तत्त्व से भी अधिक नैतिकता एवं नैतिकता से भी अधिक आध्यात्मिकता (भाव की पवित्रता) चाहिये।

परिच्छेद - 1

स्वास्थ्यप्रद दिन-चर्या विधि

जिस प्रकार सुख शान्ति के लिए योग्य आहार-विहार की अत्यन्त आवश्यकता है, उसी प्रकार स्वास्थ्यकर जीवन के लिए योग्य आहार-विहार की अत्यन्त आवश्यकता है। आयुर्वेद आचार्यों ने भी कहा है-**'आचाराल्लभते ह्यायु:'** आचार से आयु की प्राप्ति होती है। यहाँ पर आचार शब्द से आचार के साथ-साथ विचार को भी ग्रहण किया गया है क्योंकि बिना विचार आचार नहीं होता है। आचार को संस्कृत में चर्या भी कहते हैं। सामान्यत: चर्या एक होने पर भी विशेष दृष्टिकोण से दैनिक-रात्रिक-सर्वऋतु-सम्बन्धी, यावज्जीवन आदि भेद से चर्या अनेक प्रकार की हैं। एक-एक जल बिन्दु मिलकर जैसे समुद्र बनता है उसी प्रकार प्रत्येक समय की चर्या मिलकर यावज्जीवन की चर्या बनती है। जैसे एक-एक ईंट मिलकर एक बहुत बडा महल बनता है, उसी प्रकार दैनिक चर्या मिलकर यावज्जीवन की चर्या बनती है। दैनिक चर्या में दिवस एवं रात्रि सम्बन्धी दोनों चर्या गर्भित है। दैनिक चर्या ब्रह्ममुहूर्त से प्रारम्भ होती है इसलिए ब्रह्ममुहूर्त में आलस्य त्याग करके शय्या त्याग करना चाहिए -

ब्रह्ममुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वास्थो रक्षार्थमायुष:।

स्वस्थ पुरुष आयु की रक्षा के लिए ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं। अंग्रजी में एक नीति है -

Early to bed and early to rise,
Makes a man Healthy, Wealthy and wise.

अर्थात् जल्दी शयन करने तथा जल्दी शय्या छोडने से मनुष्य निरोगी, धनवान् एवं बुद्धिमान् बनता है। ब्रह्ममुहूर्त में शरीर, बुद्धि, मन आदि अधिक सक्रिय होते हैं तथा श्रम-क्लान्त आदि नहीं रहता है, इसलिए ब्रह्ममुहूर्त में स्मरणशक्ति, विवेक शक्ति, विचार शाक्ति अधिक होने के कारण उस समय हित-अहित का विचार ठीक रूप में होता है। ब्रह्ममुहूर्त में उठने से वात, पित्त, कफ के उद्रेक नहीं होते। ब्रह्ममुहूर्त में उठने से दैनन्दिन कार्य योग्य एवं सुचारु रूप से होते हैं। देरी से उठने से दोष (कुपित) हो जाता है तथा ब्रह्मकालीन स्वास्थ्यप्रद, जल-वायु, वातावरण, सूर्य किरण आदि प्राप्त नहीं होते जिससे विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। देरी से उठने से दैनिक कार्य भी ठीक समय पर नहीं हो पाता है जिससे मन अव्यवस्थित हो जाता है और मानसिक तनाव पैदा हो

जाता है। देरी से उठने से आलस्य, अनुत्साह, जडता आदि उत्पन्न होते हैं। प्राकृतिक नियमानुसार रात्रिचर पशु-पक्षी को छोडकर अन्यान्य पशु-पक्षी यहाँ तक कि वनस्पति तक ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते हैं। अनेक पशु-पक्षी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर अपनी-अपनी भाषा में पुकारते हैं, गाना गाते हैं, कलरव करते हैं मानो देरी तक शय्या में सोये हुए अप्राकृतिक आलसी मनुष्य को ही उठा रहे हो।

प्राचीन काल में मनुष्य के पास समय जानने के लिए विभिन्न यंत्र, घडी आदि नहीं थे तो भी प्राचीन काल में नक्षत्र, ग्रह आदि को देखकर, पशु-पक्षी के कलरव (ध्वनि) सुनकर तथा अभ्यास के कारण ब्रह्ममुहूर्त में उठकर अपने-अपने योग्य कर्तव्यपालन में दत्तचित्त हो जाते थे, परंतु वर्तमानकाल में समय जानने के लिए अलार्म घडी होते हुए भी सूर्योदय के बाद बहुत देरी से शय्या त्याग करते हैं। पूर्व रात्रि में सिनेमा, टी.वी., कुकथा, परचिन्ता, जासुसी, नोवेल, क्लब में समय अपव्यय करके रात में एक-दो बजे सोते हैं एवं दिन में सात-आठ बजे उठते हैं। उठने के बाद भी बिना मुख धोये, बिना शौच क्रिया किए बेड-टी पीते हैं। उपरोक्त व्यक्तियों को क्या हम शिक्षित, सभ्य एवं सांस्कृतिक व्यक्ति कह सकते हैं ? वे लोग तो बगुला के समान बाह्य में सफेद और भीतर से काले हैं। देरी से उठने में समयाभाव के कारण स्नान, शौचादि क्रिया बन्दर के समान जल्दी-जल्दी करके स्कूल-कॉलेज, ऑफिस, कारखाना आदि स्वकार्य-क्षेत्र के लिए यन्त्र के समान अव्यवस्थित रुप से दौडकर भागते हैं। इसी प्रकार देरी से उठने से स्वास्थ्य हानि के साथ-साथ अनेक अव्यवस्था हो जाती है।

ब्रह्ममुहूर्त में जिस समय शय्या से उठना है उस समय वाम पार्श्व को नीचे करके एवं दक्षिण पार्श्व (दाया भाग) को ऊपर करके मङ्गलमय भगवान् का नाम स्मरण करते हुए उठना चाहिए। मङ्गलमय भगवान् का नाम स्मरण करने से भाव विशुद्धि होती है जिससे दैनन्दिन कार्य मङ्गलमय हो जाता है। उठने के बाद पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके पद्मासन या पर्यङ्कासन आदि सुखासन पर बैठकर मङ्गलमय, पवित्र, दयामय भगवान् का नाम स्मरण करते हुए दैनिक कार्यक्रम के बारे में विचार करना चाहिए। विचारानुसार आचार होता है। कहा भी है As you think, so you become. इसलिए उत्तम- उदात्त, प्रेम-अहिंसामय विचार करना चाहिए। जिस प्रकार बाल्यकालीन शिक्षा-दीक्षा आदि आचार-विचार को प्रभावित करती है, उसी प्रकार प्रात:कालीन आचार-विचार पूर्ण दैनन्दिन कार्य को प्रभावित करता है। भगवान् के नाम-स्मरण के बाद जिस स्वर से श्वास-प्रश्वास चल रहा है उस तरफ के पांव को पहले उठाकर चलना (गमन करना) चाहिए क्योंकि श्वास-प्रश्वास का जीवन के

ऊपर, अरोग्य के ऊपर गहरा प्रभाव पडता है।

रात्रि में संचित मल-मूत्र के वेग को बिना रोके मल-मूत्रादि का विसर्जन करना चाहिए क्योंकि मल-वेग को रोकने से शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मल-मूत्रादि का विसर्जन ग्राम, नगर, यातायात मार्ग से दूर होना चाहिए क्योंकि ग्रामादि के निकट मल विसर्जन करने से वातावरण दूषित हो जाता है जिससे विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं एवं शीघ्रातीशीघ्र रोग फैल जाते हैं। शौच स्थान सूक्ष्म जीव-जन्तु से रहित स्वच्छ होना चाहिए। अस्वच्छ एवं जीव-जन्तु सहित स्थान में मल-मूत्र विसर्जन करने से अनेक जीवों का घात हो जाता है। मल विसर्जन स्थान एकान्त, विस्तृत एवं गुह्य होना चाहिए क्योंकि जन-यातायात स्थान में मल विसर्जन करने से आयु क्षय होती है तथा स्व-पर को लज्जा का अनुभव होने लगता है। सूर्य की तरफ मुख करके मल विसर्जन नहीं करना चाहिए। फल-फूल से लदे हुए वृक्ष के नीचे, उद्यान में, पशुओं के स्थान में मल-विसर्जन नहीं करना चाहिए। प्राचीन काल में उपरोक्त प्राणाली से मल-विसर्जन करते थे जिससे वातावरण पवित्र रहता था। रोगोत्पत्ति का प्रसार नहीं होता था परंतु आधुनिक व्यक्ति रास्ते में, गांव में, गली में, यातायात के स्थान आदि में निर्लज्ज होकर खडे-खडे ही पशुओं के समान मल विसर्जन करते हैं। इससे अस्वच्छता के साथ-साथ वातावरण दूषित हो जाता है और विभिन्न रोग उत्पन्न होकर फैल जाते हैं।

प्राचीन काल में घर की गन्दगी ग्राम-नगर से दूर मिट्टी के गड्ढे में डालकर उसके ऊपर मिट्टी डाल देते थे जिससे कचरा उत्तम खाद के रूप में परिणत हो जाता था एवं वातावरण भी दूषित नहीं होता था, किंतु आधुनिक अर्द्ध-शिक्षित, परावलम्बी, आलसी लोग घर की गन्दगी आम रास्ते पर, गली में दूसरे के सामने नि:शंक होकर डाल देते हैं जिससे आम जनता को यातायात में बाधा पहुँचती है। प्राचीन काल में लोग आम रास्ते को स्वच्छ करने को पवित्र कर्तव्य एवं धर्म मानते थे। अभी आम रास्ते में मल-मूत्र, घर की गन्दगी, चाय का प्याला, नाश्ते की पत्तल, पान की पीक, फलों के छिलके, कूडा-कचरा डालकर स्वयं को शिक्षित मान रहे हैं। भारतीय आधुनिक शिक्षित लोग विदेशी लोगों का भेडों के समान अन्धानुकरण करते हैं। किंतु विदेश की संस्कृति, स्वावलम्बन, स्वच्छता आदि को छोडकर, फैशन, अयोग्य आहार-विहार, बाबुगिरी आदि दुर्गुणों को ही ग्रहण करके स्वयं को आधुनिक और सभ्य व्यक्ति मानकर झूठे अहंकार का पोषण करते हैं।

शौच के बाद स्वच्छ पानी लेकर एवं सूखी मृदु मिट्टी से गुदा को स्वच्छता से

धोना चाहिए। गुदादि नहीं धोने से भगन्दर आदि रोग हो सकते हैं। उसके पश्चात् स्वच्छ पानी लेकर एवं स्वच्छ सूखी मिट्टी या राख से ठीक से मल-मलकर हाथों को तीन बार धोना चाहिए। यदि इस प्रकार नहीं करते हैं तो हाथ में मलांश रह जायेगा, जिससे शरीर अपवित्र होने से भोजन के समय में मल के साथ-साथ कीटाणु पेट में जायेंगे तो नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जायेंगे। सूखी मिट्टी एवं राख में ऐसे क्षारीय आदि तत्त्व रहते हैं, जिससे हाथ स्वच्छ हो जाता है और रोगाणु हाथ से दूर हो जाते हैं।

नीम, बबुल, करंज आदि योग्य दांतुन से दाँत स्वच्छ करने चाहिए। दांतुन के पश्चात् उस के दो फाल करके जीभ स्वच्छ करना चाहिए। दांतुन के लिए मिट्टी, बालू, ब्रश, टूथपेस्ट आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उससे आरोग्य के लिए क्षति पहुँचती है।

शौच के उपरान्त शारीरिक मल, अशुचिता, श्रम दूर करने के लिए छना हुआ स्वच्छ ऋतु के योग्य पानी से स्नान करना चाहिए। स्नान से शरीर स्वच्छ, पवित्र होता है जिससे विभिन्न धार्मिक, नैतिक, स्व-कर्तव्य करने के लिए शरीर योग्य हो जाता है। स्नान के पश्चात् शरीर को सूखे खद्दर चादर से रगडकर पोंछ लेना चाहिए अन्यथा चर्म रोग का भय रहता है।

स्नान के बाद स्वच्छ धुला हुआ भद्र पोशाक पहनकर धार्मिक देवालयादि प्रार्थना स्थान में जाना चाहिए। वहाँ योग्य रीति से पूजन, अर्चन, प्रार्थना, वन्दना, भक्ति, भजन, कीर्तन आदि भाव-शुद्धि, आस्था, विश्वास, श्रद्धा, के कारणभूत कार्य करने चाहिए। धार्मिक स्थान में यदि कोई साधु-सन्त, ज्ञानी, धर्मात्मा है तो उनसे धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक उपदेश, परामर्श, मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि साधु-सन्त एवं अनुभवी महापुरुषों का मार्गदर्शन जीवन के लिए उत्थान का कारण बनता है। उनके उपदेश से जीवन को एक आध्यात्मिक प्रकाश मिलता है। सम्पूर्ण क्रांति एवं उत्थान का बीज महापुरुषों के अनुभव से प्राप्त उपदेश में निहित है। आहार, आचार-विचार रूपी पवित्र त्रिवेणी संगम साधु समागम से प्राप्त होता है। यदि धार्मिक स्थान में कोई महात्मा नहीं है तो नैतिक, धार्मिक सत्साहित्य का, महापुरुषों की जीवनी आदि का अध्ययन करके मनन, चिंतवन करना चाहिए। सत्साहित्य अध्ययन से इंद्रिय व मन संयमित एवं पवित्र हेा जाते हैं। जिससे अनेक मानसिक तनाव दूर होने के कारण मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोग भी शांत हो जाते हैं। मंदिर का पवित्र, स्वच्छ, निर्मल वातावरण तथा वहाँ के पवित्र मंत्र, स्तोत्र, भजन व सत्संगती के कारण जीवन को एक नई चेतना, स्फूर्ति, प्रेरणा आदि मिलती है। ज्ञात अज्ञात,

प्रमाद, परिस्थितिवशत: यदि स्वयं से दूसरों के प्रति जो दूषित मनोभाव हुआ होगा, उसका प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, निन्दा, गर्हादि देव, शास्त्र, गुरु, सज्जन धर्मात्मा पुरुष के सम्मुख करने से मानसिक ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, टूट जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं जिससे मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। यदि पूर्वोक्त देव आदि की उपस्थिति नहीं है तो आत्मसाक्षी पूर्वक प्रायश्चित्त कर लेने पर भी उपरोक्त दोष दूर होकर उपरोक्त गुण प्रगट होते हैं। पवित्र प्रार्थना स्थान में आदर्श महापुरुषों की प्रतिमूर्ति, भावचित्र, संस्मरण आदि रहता है उनसे भी प्रेरणा प्राप्त होती है। उपरोक्त कारणों से महात्मा गांधी कहते थे कि देवालय एक प्राकृतिक चिकित्सालय है। देवालय में स्व-पर की उन्नति, कल्याण, स्वास्थ्य आदि की पवित्र भावना करनी चाहिए। वहाँ पर जाना एवं देव दर्शन करना जीवन को संयमित, स्थिर, दृढ एवं उन्नति के लिए अंकुश के सदृश है। अभी तक देश-विदेश अथवा प्रत्येक क्षेत्र में जो महापुरुष हुए हैं वे कुछ न कुछ प्रतिज्ञा का दृढ आवलम्बन लेकर जीवन के पथ पर अग्रसर हुए हैं। इस आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को आयुर्वेद के आचार्यों ने सटीक रूप से ज्ञात करके स्वास्थ्य के लिए भी व्रत का महत्वपूर्ण योगदान बताया है-

आर्द्रसन्तानता त्याग: कायवाक्चेतसां दम: ।
स्वार्थबुद्धि: परार्थेषु पर्याप्तमिति सद् व्रतम् ।। 46

1.25 अध्याय 2 (अष्टाङ्ग हृदये वाग्भट विरचित)

आर्द्र संतानता (अतिशय करुणा या सब प्राणियों में दया भाव), त्याग-दान (अपना अधिकार को छोडकर दूसरों को अधिकार देना), शारीरिक, वाचिक और मानसिक चपलता का निग्रह (शांति), दूसरें के कार्यों में स्वार्थ बुद्धि (दूसरों के कार्य को अपना ही कार्य समझना) ये चारों सम्पूर्ण सद्व्रत (सज्जनों का धर्म) है।

देव स्थान से घर को वापस होने के बाद शुद्ध, प्रासुक, ऋतु अनुकूल योग्य आहार पूज्य अतिथियों को देना चाहिए। इस आहार दान से गुणी के प्रति अनुराग प्रगट होता है। ज्ञानी, धर्मात्मा, अतिथियों की पूजा, सत्कार एवं रक्षा से धर्म, नीति, सदाचार आदि की रक्षा होती है जिससे देश, राष्ट्र, स्व-पर का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य स्थिर होता है और वृद्धि होती है। पूज्य अतिथियों को आहार दान देते समय मन में प्रेम, उदारता, वात्सल्य, निर्लोभ आदि उत्तमोत्तम भावधारा उत्पन्न होती है। इन पवित्र भावधाराओं से मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म एवं शक्तिशाली प्रभाव स्व-पर एवं वातावरण के ऊपर भी पडता है।

अतिथियों को आहार दान के उपरांत असमर्थ, गरीब, रोगी, विकलाङ्ग

व्यक्तियों को भी आहार (भोजनादि) देकर योग्य सेवा करनी चाहिए। गृह पालित शाकाहारी पशु-पक्षियों को भी योग्य आहार पानी देना चाहिए। उसके बाद घर के दास-दासियों की योग्य व्यवस्था करके पहले मात-पिता, रोगी, वृद्ध, बाल आदि को भोजनादि देने के बाद स्वयं, पवित्र, एकांत, स्वच्छ प्रकाश युक्त स्थान में परिवार जन सहित बैठकर भोजन करना चाहिए। भोजन के पहले स्वच्छ, ढिली पोशाक पहनकर हाथ, पाव, मुख स्वच्छ प्रासुक पानी से धोकर भोजन करना चाहिए। नाखुन के अंदर या हाथ में दूषित मैल रहने से भोजन के साथ दूषित मैल तथा जीवाणु भी पेट में जाकर अनेक रोग उत्पन्न कर देते हैं। अस्वच्छ वस्त्र, चप्पल, जुता, मोजा आदि पहनकर भोजन नहीं करना चाहिए। जो कपडा पहनकर शौच, बाजार, अस्वच्छ स्थान में गये होंगे वह कपडा पहनकर भी भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि उस वस्त्रादि में अस्वच्छ वस्तु के साथ-साथ जीवाणु लग जाते हैं। जिससे भोजन के समय पेट में जाकर विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं। चुस्त कपडे पहनकर भोजन करने पर रक्त संचालन में एवं श्वास प्रक्रिया में बाधा पहुँचती है।

पूर्व या उत्तरादिक् की तरफ मुख करके स्वच्छ पाटे (पीढा) के ऊपर बैठकर, प्रसन्न, चिंतामुक्त होकर भोजन करना चाहिए। सुश्रुत ने कहा है -

ईर्ष्याभयक्रोधपरिक्षतेन लुब्धेन रुग्दैन्यपीडितेन्।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं च सम्यक् परिणाममेति॥

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, चिंता, दैन्य तथा द्वेष से पीडित मनुष्यों द्वारा खाया गया भोजन ठीक से नहीं पचता। क्रोधादि भावों से शरीर के विभिन्न ग्रंथियों से विभिन्न विषाक्त रासायनिक द्रव्य झरता है जिससे शरीर, मन, आहार, पाक क्रिया आदि के ऊपर कुपरिणाम डालता है।

शुष्क कंठ को नरम बनाने के लिए भोजन के प्रारम्भ में थोडा सा गुनगुना (थोडा ऊष्ण) पानी पिना चाहिए। प्राचीन काल में भारत में आचमन की पद्धति इस दृष्टिकोण से प्रचलित थी। उसके बाद रुचि अनुसार पहले मिठा, गरीष्ठ, स्निग्ध लड्डू, पूडी आदि खाना चाहिए। मध्य में कसैला, नमकीन आदि भोज्य पदार्थ खाना चाहिए। बीच-बीच में थोडा-थोडा पानी, फल का रस, दूध या थंडाई आदि भी पीना चाहिए। भोजन के समय विरोध आहार सेवन न हो ऐसी विशेष दृष्टि रखनी चाहिए क्योंकि विरोध आहार, विरोध रस एक साथ भोजन करने से, विरोध रासायनिक मिश्रण से स्वास्थ्य हानिप्रद विषाक्त रस उत्पन्न हो जाते हैं।

विरुद्ध भोजन की विषतुल्यता -

विरुद्धमपि चाहारं विद्याद्विषगरोपमम्॥ 29

पृ. 69 अध्याय 7 (अष्टाङ्ग हृदये वाग्भट विरचित)

विरुद्ध आहार को भी विष की तरह तत्काल मारक एवं गर विष की तरह कालान्तर में मारने वाला समझना चाहिए।

दूध के विरुद्ध फल और धान्य -

विरुद्धमम्लं पयसा सह सर्वफलं तथा।
तद्वत्कुलत्थवरक-कङ्गु-वल्लभ-कुष्टका: ॥ 31

(अष्टाङ्ग हृदये वाग्भट विरचित)

द्रव या अद्रव सब प्रकार के अम्ल दूध के साथ विरोधी है। दूध के साथ बहुत से फल एवं कुलथी, वरक (एक प्रकार का धान्य), कांगनी, वल्ल (निष्पाव) और मोठ विरोधी है। व्यक्त अव्यक्त अम्ल को दूध के साथ या दूध के पीछे खाना विरुद्ध है।

दुग्ध विरुद्ध शाक -

भक्षयित्वा हरितकं मूलकादि पयस्त्यजेत् ॥ 32 (अष्टाङ्ग हृदये वाग्भट)

मूली आदि हरे (कच्चे) शाक खाकर दूध नहीं पीना चाहिए। घी, तेलादि स्निग्ध वस्तु भोजन करने के पश्चात् पानी नहीं पीना चाहिए। फल या फलरस के बाद पानी नहीं पीना चाहिए। पानी पीने पर गले में दर्द सर्दी आदि रोग हो जाते हैं। केला के पश्चात् दही, मठ्ठा सेवन नहीं करना चाहिए। इनके सेवन करने से पेट में कृमि उत्पन्न होती है। नारियल का पानी और कपूर मिलाकर नहीं पीना चाहिए क्योंकि दोनों मिलकर विष रूप परिणमन करते हैं। दूध के बाद अम्ल वस्तु खाने से पेट में जाकर दूध शीघ्र अम्ल रूप में परिणमन करता है जिससे दूध फटकर वांति (कै) हो जाती है।

दिन में स्पष्ट सूर्य प्रकाश में जिस समय क्षुधा लगती है उस समय भोजन करना चाहिए। क्षुधा से रहित अवस्था में भोजन करने पर भोजन में रुचि, तृप्ति नहीं आती है; अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ महाभारत

दरिद्र व्यक्ति जो भी खायें, सदा अच्छा ही भोजन करता है, क्योंकि वह भूख से खाता है। स्वाद को उत्पन्न करने वाली वह भूख धनिकों को दुर्लभ है। क्षुधा से कम पेय या भोजन करना चाहिए। अपनी अपनी क्षुधा का आधा भाग रोटी आदि वस्तु से, ¼ पेय वस्तु से पूर्ण करके, ¼ प्राणवायु अर्थात् श्वासोच्छवास के लिए छोडना

चाहिए। अधिक भोजन करने से अजीर्ण, आलस्य, निद्रा, अतिसार आदि दुष्परिणाम होते हैं। योग्य मात्रा में विष भक्षण करने से विष भी औषध का कार्य करता है एवं औषधि भी अधिक मात्रा में सेवन करने से विष का कार्य करती है।

अतिमधुर निषेवात्संततं वह्निसाद: समधिकलवणान्न प्राशनादृष्टि मान्द्यम्।
जरयति पुरेषात्यम्लतीक्ष्णोपयुक्तिर्बल विलयम सात्म्यं भुक्त मात्रं करोति ।। 365

उष्णो देहदाहाय कषायोऽनिल कोपन:।
निषेव्यमाण: सातत्यादति मात्र तया रस: ।। 366 (यशस्तिलक चुपू)

विशेष मात्रा में मीठा (गुड व शक्कर आदि) खाने से जठराग्नि (भूख) नष्ट हो जाती है। अधिक नमक वाला अन्न खाने से आंखों की नजर मंदी पड जाती है, अत्यंत खटाई व लाल मिर्च आदि चरपरे रस का सेवन बल को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार निरन्तर अधिक मात्रा में सेवन किया गया सोंठ, मिर्च, व पीपल आदि गरम रस शरीर को संतापित करते हैं और हरड व आंवला आदि कषायला रस वात कुपित करते हैं।

यवसमिथ विदाहिष्वम्बु शीतं निषेत्यं क्वथितमिदमुपास्यं दुर्जरेऽन्ने च पिष्टे।
भवति विदलकालेऽवन्ति सोमस्य पानं घृतविकृतिषु पेयंकालशेयं सदैव ।। 376

जौं का आटा खाने से उत्पन्न हुए अजीर्ण रोगों के विनाश हेतु, शीतल जल पीना चाहिए। गेहूँ का आटा खाने से उत्पन्न हुए अजीर्ण को दूर करने के लिए उबला हुआ पानी पीना चाहिए। दाल खाने से पैदा हुए अजीर्ण को नष्ट करने के लिए मठ्ठा पीना चाहिए। घृत खाने से पैदा हुए विकार में कालशय (विशेष प्रकार का मठ्ठा) का पान करना चाहिए।

आदौ जलं वह्नि विनाश काश्र्ये कुर्यात्तदन्ते कफ वृंहणं च।
मध्ये तु पीतं समतां सुखं च नास्याति योगोऽभिमत: सकृच्च ।। 368

भोजन के पहले पिया हुआ पानी जठराग्नि को नष्टकरता हुआ शरीर को दुर्बल करता है और भोजन के अन्त में पीया हुआ पानी कफ को बढाता है तथा मध्य में पीया हुआ पानी वात-पित्त-कफ को समान करता हुआ सुखदायक है। इसलिए एक बार में ही पानी को अधिक मात्रा में पीना अभीष्ट नहीं है क्योंकि आयुर्वेद के वेत्ताओं ने कहा है कि पानी बार-बार थोडा-थोडा पीना चाहिए।

अमृतं विषमिति चैतत्सलिलं निगदन्दि विदित तत्त्वार्था:।
युक्त्या सेवित अमृतं विषमेतदयुक्तित: पीतम् ।। 369

क्योंकि आयुर्वेद वेत्ताओं ने पानी के 'अमृत' और 'विष' ये दो नाम कहे हैं अर्थात् हलाहल। कोषकार ने 'अमृत', 'जीवनीय' और 'विष' इन तीन नामों का

उल्लेख किया है, उसका यही अभिप्राय है कि युक्ति पूर्वक (पूर्वोक्त विधि से) पीया हुआ पानी 'अमृत' व 'जीवनीय' नाम वाला कहा है और जब वह बिना विधि से पीया जाता है तब 'विष' नामसे कहा जाता है।

The efficiently functioning brain also requires proper amount of water to little too much is disastrous not only resulting in decreased mental efficiency but when this balance is profoundly upset is leads to dilirium, stupor and come. Water hold the essential chemicals in solution and in required amount of concentration. A shift in the either direction may result in distorted thinking.

-Medical Record.

एक प्रसिद्ध रुसी डॉक्टर (डॉ. ई. पॉदोलस्की) ने इस संबंध में कुछ उपयोगी बातें लिखी हैं। उसने लिखा है कि सुचारु रूप से मानसिक क्रिया के संचालन के लिए उचित मात्रा में पानी की आवश्यकता पडती है। बहुत कम या आवश्यकता से अधिक होने पर वह मस्तिष्क के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। इससे मानसिक क्रिया-शक्ति का ह्रास होता है। जब जल का अंश विशेष रूप से अधिक या कम हो जाता है तो प्राय: चित्तभ्रांति, तंद्रा और संज्ञा नाश होती है। जल आवश्यक तत्त्वों को सम्मिश्रित और संयुक्त रखता है। शरीर का जल अंश कम या अधिक होने से मनुष्य की विचार शक्ति अस्त-व्यस्त हो जाती है।

भोजन के उपरांत हाथ-मुँह आदि स्वच्छ रूप से धो लेना चाहिए। मुँह में दांत के मध्य में आहार के कण रह जाते हैं तो वह आहार के कण सड जाते हैं, उसमें अनेक जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं और मुँह से दुर्गंध आने लगती हैं। भोजन के पश्चात् हाथ को रगड कर आँख और सम्पूर्ण मुख पर फेरना चाहिए उससे आँख रोग एवं मुख रोग नहीं होता है। भोजन के पश्चात् 100 कदम चलना चाहिए जिससे आहार पाकस्थली में सुविधा से पहुँच जाता है। उसके बाद वाम करवट में थोडा समय विश्राम लेना चाहिए किंतु नींद नहीं लेनी चाहिए। नींद लेने से आहार पाचन ठीक नहीं होता है। कफ, मेद बढता है जिससे मोटापा रोग होता है। थोडा विश्राम के पश्चात् जीवन-यापन के लिए योग्य, अहिंसात्मक एवं न्यायपूर्वक व्यापारादि करना चाहिए। हिंसात्मक एवं अन्यायपूर्वक व्यापारादि करने से मानसिक अशांति होती है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अन्यायोपार्जित धन से किया हुआ भोजन भी, मांस एवं विष तुल्य है तथा उससे मानसिक तथा शारीरिक रोग हो जाता है।

सूर्यास्त के समय में पुनः देवालय जाना चाहिए एवं वहाँ पूर्वोक्त विधि के अनुसार पूजन, भजन-कीर्तन आदि करना चाहिए। दिन में किए हुए पापों का प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। सत्संगति, स्वध्याय आदि करना चाहिए। सूर्यास्त के दो घडी (48 मिनट) पहले भोजन कर लेना चाहिए। रात में भोजन करने से सूर्य-रश्मि के अभाव से अनेक विषाक्त कीडे भोजन में गिर जाते हैं। आहार सहित कीडे भी पेट में चले जाते हैं जिससे हिंसा के साथ-साथ अनेक रोग होते हैं। शयन के 3-4 घण्टे पहले भोजन कर लेना चाहिए क्योंकि भोजन के पश्चात् शयन करने से भोजन ठीक से नहीं पचता है जिससे अजीर्ण, अतिसार, पेट फूलना, वायु रोग आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। रात में सूर्य रश्मि नहीं रहती है इसलिए पाचन क्रिया भी ठीक से नहीं होती है। इसका विशेष वर्णन मेरी कुछ पुस्तक में 'रात्रि भोजन त्याग' प्रकरण से मिलेगा।

स्वच्छ वायु यातायात से युक्त, प्रशस्त तथा खाली कमरे में दक्षिण, पश्चिम दिक् की ओर सिर करके शयन करना चाहिए। अत्यंत मृदु, मोटा गद्दा, तकिया आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे मेरु दंड (रीढ) दुर्बल हो जाता है; रक्त संचालन ठीक रूप से नहीं होता है। स्वच्छ सुखे हुए मिट्टी के फर्श पर सोना स्वास्थ्यकर है। यदि मिट्टी, फर्श के ऊपर शयन नहीं कर पाते हैं तो एक चटाई, दरी, कपडा बिछाकर सोना चाहिए। लकडी से निर्मित पलंग, खाट के ऊपर चटाई, कपडा, सतरंजी बिछाकर उसके ऊपर सोना चाहिए। लचकदार स्प्रींग, स्पंज आदि पलंग के ऊपर नहीं सोना चाहिए। रात में वायु यातायात के लिए खिडकी खुली रहनी चाहिए क्योंकि बंद कमरे में प्राणवायु (आक्सीजन) पूर्ण रुप से नहीं मिलती है जिससे आरोग्य को क्षति पहुँचती है। शयन के पहले समस्त संकल्प विकल्प और वैर-भाव आदि दूषपरिणाम को छोडकर भगवान् का ध्यान करके, पवित्र नामस्मरण करके सोना चाहिए। दूषित मनोभाव से सोने से दूषित भयङ्कर स्वप्न भी आते हैं और गाढ निद्रा भी नहीं आती है। पहले चित्त होकर आठ श्वासोच्छ्वास तक सोना चाहिए पुनः दक्षिणपार्श्व (दायाँ भाग) में 16 श्वासोच्छ्वास तक सोना चाहिए। पुनः वामपार्श्व (बायाँ भाग) में पुरी निद्रा लेनी चाहिए। यदि वामपार्श्व में पूरी निद्रा नहीं ले पाते तो कम से कम 32 श्वासोच्छ्वास प्रमाण अवश्य सोना चाहिए। जब तक नींद नहीं आती तब तक पवित्र मन से चिंतन करना चाहिए। दिन में किया हुआ योग्य करणीय/अकरणीय, योग्य-अयोग्य विषयों का स्मरण करना चाहिए और आगे अकरणीय कार्य को नहीं करने का दृढ संकल्प करना चाहिए। इसी प्रकार शुभ विचारों से अशुभ विचार नहीं आते हैं और सुखकारी, श्रमाहारी गाढ निद्रा भी आ जाती है। निद्रा के उपरांत ब्रह्म मुहूर्त में पर्वोक्त

प्रकार उठकर योग्य कर्तव्य, दैनंदिन कार्य करना चाहिए।

दिन रात का विवेचन -

नक्त दिनाति यांति कथम्भूतस्य सम्प्रति।
दुःख भाग् न भवत्येवं नित्यं सन्निहित स्मृतिः ।। 45

(अष्टाङ्ग हृदये सूत्र स्थापनम्)

किस प्रकार का जीवन व्यतित करते हुए - मेरे दिन और रात अब कैसे जाते हैं ? इसकी सदा स्मृति बनाये रखने वाले को कभी दुःख नहीं होता है। जो मनुष्य सदा दिन-रात में अपनी दिनचर्या, रात्रिचर्या का प्रतिदिन समीक्षण करता है उस मनुष्य को कभी दुःख नहीं होता।

आचार पालन का परिणाम -

इत्याचारः समासेन यं प्राप्नोति समाचरन्।
आयुरारेग्यमैश्वर्यं यशो लोकांश्च शाश्वतान्।। 48

(अष्टाङ्ग हृदये सूत्र स्थापनम्)

यह आचार संक्षेप में कह दिया है; इसका पालन करने से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य (अप्रतिहत शक्ति), यश तथा शाश्वत लोक (मोक्ष, स्वर्ग) मिलता है। शाश्वत लोक के लिए भगवान् ने कहा है - ''यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम'' जहाँ जाकर मनुष्य लौटता नहीं अर्थात् पुनर्जन्म नहीं होता, वहीं मेरा उत्तम गृह (मोक्ष, स्वर्ग) है, ऐश्वर्य भी है - यथा -

आवेशश्चेतसो ज्ञानार्थानां छन्दतः क्रिया।
दृष्टि श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्।।

(चरक संहिता अध्याय व/व 141)

-: स्वास्थ्यामृतम् :-

अयोग्य आहार-विहार-विचार करने वाले किसी व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य को देखकर स्वयं स्वस्थ बनने के लिए उनका अंधानुकरण करना अयोग्य है। क्या स्वस्थ भी सुअर के आहार-विहार-विचार का अन्धानुकरण करना हंस, गौ, मनुष्य के लिए योग्य है।

परिच्छेद - 2

चर्या विधि के विशेष वर्णन

दन्त धावन -

प्रात: प्रातर्भक्षयेद्दंतकाष्टं। निर्दोषं यद्दोषवर्गानुरुपम्॥
अन्ने कांक्षा वाक्प्रवृत्तिं सुगंधिं। कुर्यादेतन्नाशयेदास्यरोगान्॥ 2

(कल्याणकारकषष्ठपरिच्छेदपृष्ठ-83)

प्रतिदिन प्रात: काल नीम, बबुल, कारंज, अर्जुन आदि के दांतुनों से जो वात, पित्त, कफों के अनुकूल अर्थात् जो दोषों को नाश करने वाले हों एवं निर्दोष हो, दांत साफ करना चाहिए। इस प्रकार दांतुन करने से भोजन में ईच्छा, वचन प्रवृत्ति में स्पष्टता, मुख में सुगंधी एवं सर्व मुख रोगों का नाश होता है।

दातुन करने के अयोग्य मनुष्य

शोषोन्मादाजीर्णमूर्च्छार्दिता ये। कासश्वासच्छार्दिहिक्काभिभूता:॥
पानाहारा: क्लिन्नगात्रा: क्षतार्ता:। सर्वे वर्ज्या: दन्तकाष्टप्रयोगे॥ 3

शोष (क्षय), उन्माद, अजीर्ण, मूर्च्छा, कासश्वास, वमन, हिचकी आदि रोगों से पीडित, क्षत आदि के द्वारा जिनका शरीर क्लिन्न (आर्द्र) हो और पान, आहार ले चुकें हो ऐसे मनुष्य दातुन न करें।

तेल घृताभ्यङ्ग गुण

तैलाभ्यंग श्लेष्मवातप्रणाशी। पित्तं रक्तं नाशयेद्वा घृतस्य॥
देहं सर्वं तर्पयेद्रोमकूपै र्वैवर्ण्यादिख्यातरोगापकर्षी॥ 5

तेल मालिश करना यह कफ और वात को नाश करता है। घी के मालिश करने से रक्त पित्त दूर हो जाता है। रोम कूपों से प्रवेश होकर यह सर्व देह को शांति पहुँचाता है और वैवर्ण्यादि प्रसिद्ध त्वचागत रोगों को दूर करता है।

अभ्यङ्ग के लिए अयोग्य व्यक्ति -

मूर्च्छाक्रांतोऽजीर्णभक्त: पिपासी। पानाक्रांतो रेचकी क्षीणगात्र:॥
तं चाभ्यंगं वर्जयेत्सर्वकाले। सद्योगर्भे दाहयुक्तज्वरे वा॥ 6

मूर्च्छित, अजीर्ण रोग से पीडित, प्यासी मद्यादि को जिसेने पी लिया हो, रेचक लिया हो, जीनका शरीर अति कृश हो, दाह ज्वर से युक्त हो, गर्भ धारण कर अल्प समय हो गया हो तो ऐसे व्यक्तियों को हमेशा मालिश नहीं करना चाहिए।

व्यायाम के गुण -

दीप्ताग्नित्वं व्याधिनिर्मुक्तगात्रं। निद्रा तंद्रास्थौल्यनिर्नाशनं च॥
कुर्यात्कांतिं पुष्टिमारोग्यमायु व्यायामोऽयं यौवनं देहदार्ढ्यम्॥ 7

प्रतिदिन मनुष्य को व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम से अग्नि तेज होती है; शरीर के रोग दूर होते हैं। निद्रा, आलस्य, स्थुलता आदि शरीर दोष दूर होकर शरीर में कांति, पुष्टी, स्वास्थ्य और दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। विशेष क्या; यह व्यायाम यौवन को कायम रखता है और शरीर को मजबुत करता है।

व्यायाम के लिए अयोग्य व्यक्ति -

तं व्यायामं वर्जयेद्रक्तपित्ती। श्वासी बाल: कासहिक्काभिभूत:॥
स्त्रीषु क्षीणो भुक्तवान्सक्षतांगस्सोष्णे काले स्विन्नगात्रो ज्वरार्त:॥ 8

रक्तपित्त, श्वासकांस (खांसी), हिचकी, क्षत (जख्म) और ज्वर से पीडित, जिसके शरीर से पसीना निकला हो, जो अति मैथुन से क्षीण हो ऐसे मनुष्य एवं बालक को व्यायाम नहीं करना चाहिए तथा स्वस्थ पुरुष को भी उष्णकाल (ग्रीष्म ऋतु) में व्यायाम छोड देना चाहिए।

बलार्ध लक्षण -

प्रस्वेदाद्वा शक्तिशैथिल्यभावाच्छक्तेरंर्धं चावशिष्टं विदित्वा॥
व्यायामोऽयं वर्जनीयो मनुष्यैरत्यंताधिक्यान्वितो हंति मर्त्यम्॥ 9

यथेष्ट व्यायाम करने के बाद पसीना आवे अर्थात् शक्ति कम हो गई तब अर्धांश शक्ति रह गई समझकर व्यायाम को छोडना चाहिए। अत्याधिक व्यायाम शरीर का नाश ही करता है।

उद्वर्तन के गुण -

त्वग्वैवर्ण्ये श्लेष्ममेदोविकारं। कण्डूप्राये गात्रकार्श्यस्वरूपे॥
वाताक्रांते पित्तरक्तातुरेऽस्मिन्। कार्यं तत्रोद्वर्तनं सर्वदैव॥ 10

शरीर में वर्ण विकार, कफ विकार, मेद धातु का विकार हो जाये, प्राय: सर्व शरीर वात से पीडित हो एवं रक्त पित्त से पीडित हो उस अवस्था में खुजली हो जाय व शरीर कृश हो जाये तो उद्वर्तन (उबटन) सर्वदा उत्तम है।

विशिष्ट उद्वर्तन के गुण -

फेनोद्धर्षाच्छोदसंवाहनाद्यै:। गात्रस्थैर्यं त्वक्प्रसादो भवेच्च॥
मेदश्लेष्मग्रन्थिकण्डवामयास्ते। नस्युस्सर्वे वातरक्तोद्भवाश्च॥ 11

गेहूँ आदि की पिट्ठी से शरीर को घर्षण करने व औषधि के चूर्ण को शरीर पर

डालने से शरीर में स्थिरता आती है, चर्म में कांति आती है, मेदविकार, श्लेष्म विकार, ग्रंथीरोग (संधि रोग), खुजली, वातरोग एवं रक्तोत्पन्न रोग भी इससे नष्ट होते हैं।

पवित्र स्नान के गुण -

तुष्टिं पुष्टिं कांतिमारोग्यमायुस्सौम्यं दोषाणां साम्यमग्नेश्च दीप्तिम्॥
तंद्रानिद्रापापशान्तिं पवित्रं। स्नानं कुर्यादन्नकांक्षामतीव॥ 12

स्नान करने से मन में संतोष उत्पन्न होता है, तेज बढता है, आरोग्य रहता है, दीर्घ आयु होती है, शुचिता प्राप्त होती है, दोषों का साम्य होता है, अग्नि तेज हो जाती है, आलस्य निद्रा दूर हो जाती है, पाप को उपशमन कर शरीर को पवित्र करता है, भोजन में इच्छा करता है, इसलिए पवित्र स्नान अवश्य करना चाहिए।

स्नान के लिए अयोग्य व्यक्ति -

स्नानं वर्ज्यं छर्दिते कर्णशुले। चाध्मानाजीर्णाक्षिरोगेषु सम्यक्॥
सद्योजाते पीनसे चातिसारे। भुक्ते साक्षात्सज्वरे वा मनुष्ये॥ 13

जिसको उल्टी हो रही हो, कर्णशूल (दर्द) हो गया हो, जिसका पेट फूल गया हो, अजीर्ण हो गया हो आँखों का रोग हो गया हो, पीनस रोग होकर अल्प समय हो गया हो, अतिसार हो गया हो, जिसने भोजन किया हो, साक्षात्ज्वर सहित हो, ऐसे मनुष्य ऐसी अवस्था में स्नान नहीं करें।

जूता पहिनने व पादाभ्यङ्ग के गुण -

सोपानत्कस्संचरेत्सर्वकालं। तेनारोग्यं प्राप्नुयान्मार्दवं च॥
पादाभ्यंगात्पाददाहप्रशांतिं। निद्रासौख्यं निर्मलां चापि दृष्टिम्॥ 17

हमेशा जूता पहिनकर चलना चाहिए जिससे आरोग्य प्राप्त होता है व शरीर मृदु हो जाता है। पैर (पाद तल) में तेल मालिश करने से पाद की जलन शान्त होती है, सुखपूर्वक नींद आती है, आँख निर्मल हो जाती है।

रात्रिचर्याधिकार - मैथुन सेवन काल -

शीत काले नित्यमेकैकवारं। यायात्स्वस्थो ग्राम्यधर्मोपयोगम्॥
ज्ञात्वा शक्तिं चोष्णकाले कदाचित्। पक्षादर्धात्सप्तष पंचरात्रात्॥ 18

स्वस्थ मनुष्य ठण्ड के मौसम में प्रतिनित्य एक दफे मैथुन सेवन कर सकता है। उष्णकाल में अपनी शक्ति का ख्याल रखकर पाँच, छह, सात व आठ दिन में एक दफे मैथुन सेवन करना चाहिए।

मैथुन के लिए अयोग्य व्यक्ति -

क्षुत्तृष्णार्तों मूत्रविट्शुक्रवेगी। दूराध्वन्यो य क्षतोत्पीडिताँग॥

रेत: क्षीणो दुर्बलश्च ज्वरार्त:। प्रत्यूषे संवर्जयेत्तं व्यवायम्॥ 19

क्षुधा तृष्णा से जो पीडित हो, मल-मूत्र व शुक्र का वेग उपस्थित (बाहर निकलने के लिए तैयार हो) हो, दूर से चलकर आने से जो थक गये हों, क्षय से जो पीडित हो, जिनका शुक्र क्षीण हो गया हो, जो शक्तिहीन हो, ज्वर पीडित हो उनको मैथुन सेवन वर्ज्य है। एवम् प्रात:काल के समय मैथुन सेवन किसी को भी नहीं करना चाहिए।

शरीर पर तेल मर्दन से लाभ -

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम्।
शिर: श्रवणपादेषुं तं विशेषेण शीलयेत्॥ 54
सार्षपं गन्ध तेलं च यत्तैलं पुष्पवासितम्।
अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन॥ 55
अभ्यङ्गोवात कफ हृच्छमशान्तिबलं सुखम्।
निद्रावर्णमृदुत्वायु: कुरुते दृष्टिपुष्टि कृत्॥ 56
अभ्यङ्ग: शीलितो मूर्ध्नि सकलेन्द्रिय तर्पण:।
दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान्गदान्॥ 57
केशानां बहुता दार्ढ्यं मृदुता दीर्घतां तथा।
कृष्णतां कुरुते कुर्याच्छिरस: पूर्णतामपि॥ 58 (सार्थयोगरत्नाकर भा.-१)

बदन पर तेल मर्दन करने से सर्व शरीर को बल प्राप्त होता है इसलिए हमेशा तेल लगाने से लाभ होता है, इसमें विशेषतया सिर, कर्ण और पाद पर तैल-मर्दन से लाभ होता है। सरोसों का तेल, सुगन्धि तेल, सुबासित फूलों से सुगन्धित किया हुआ तेल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से बना हुआ तेल भी बहुत लाभदायक होता है। तेल मर्दन से कफ, वात व श्रम का परिहार होता है तथा सुख-शांति और बल बढता है। तेल मर्दन से निद्रा अच्छी प्रकार से आती है, शरीर का वर्ण अच्छा होता है और त्वचा कोमल होती है। दृष्टि-ज्योति अच्छी होती है, शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट होता है तथा आयु बढती है। सिर पर तेल मालिश करने से मस्तिष्क बलवान एवं सिर के बाल मजबूत, चिकने तथा घने हाते हैं। सिर पर तेल मालिश सभी इन्द्रियों को समाधानकारक है एवं दिमाग के रोगों का नाशक है तथा छोटे बच्चों के सिर को पूर्ण विकास प्रदान करता है।

कान में तेल डालने से लाभ -

न कर्ण रोगा न मलं न च मन्याहनुग्रह:।
नोच्चै: श्रुतिर्नवाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात्॥ 59

रसाद्यै: पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते।
तैलाद्यै: पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते॥ 60

हमेशा कान में तेल डालने से कर्ण सम्बन्धी बीमारी नहीं होती है तथा मल संचय भी नहीं होता है, मन्यास्तंभ और हनुग्रह ये वात रोग नहीं होते हैं और कर्णबधिरता दूर होकर दूर से भी सुन सकते हैं। वनस्पति का रस कान में डालना हो तो दिन में आहार के पहले डालना लाभदायक है एवं तेलादि स्निग्ध पदार्थ कान में डालना हो तो सूर्यास्त के बाद डालना चाहिए।

पाद में तेल मर्दन से लाभ -

पादाभ्याङ्गस्तु सुस्थैर्यनिद्रा दृष्टि प्रसादकृत्।
पाद सुप्ति भ्रमस्तम्भसंकोचस्फुटन प्रणुत्॥ 61

पाद पर तेल मर्दन से पाद शक्तिशाली होते हैं, नींद अच्छी आती है, दृष्टि को प्रसन्नता प्राप्त होती है, पाददाद, पादशूल, पादबधिरता आदि सभी पाद विकार नष्ट होते हैं।

सिर में तेल मर्दन से लाभ -

मूर्धोऽभ्यङ्गात्कर्णयो: शीतमाहु: कर्णाभ्यङ्गात्पादयोरेमेव।
पादाभ्याङ्गा नेत्ररोगहरेच्च नेत्राभ्यङ्गादन्तरोगश्च नश्येत्॥ 62
व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगा:॥ 63

सिर पर तेल मर्दन करने से सिर के सभी रोग नष्ट होते हैं, मन शांतिमय बन जाता है, प्रसन्नता बढकर उत्साह आता है और बाल अच्छे होते हैं। सिर पर तेल मर्दन से भी अच्छा कानों में तेल डालना एवं कान में तेल डालने से अच्छा पाद में तेल मर्दन करना है। पैर तलों में तेल के मर्दन से नेत्र के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। आँख में तेल डालने से दाँत के सभी रोगों का नाश हो जाता है, व्यायाम से अगर अतिकष्ट से जिसका शरीर थक गया है उसके पाद में तेल मर्दन से गरुड पक्षी को देखकर जिस प्रकार सर्प दूर भागते हैं उसी प्रकार व्यायाम से थके व्यक्ति के तेल मर्दन के कारण सभी रोग दूर भागते हैं।

तेलाभ्यङ्ग से कफ दोष नष्ट होते हैं, मेद कम होता हैं, शुक्रधातु और सामर्थ्य बढता है, रक्त वृद्धि होती है, कांति बढती है और त्वचा मृदु और मुलायमान होती है इसलिए दीर्घायु इच्छुकों के लिए तैलाभ्याङ्ग लाभदायक है। शरीर एक अखण्ड सूक्ष्म यंत्र के समान है। पूर्ण शरीर में चर्म, स्नायु, नाडी आदि व्याप्त हैं। जिस प्रकार गाडी का चक्र सुचारु रूप में गतिशील होने के लिए तेल मोबाइल ऑयल आदि चाहिए उसी प्रकार

शरीर रूपी गाडी के चक्र को गतिशील होने के लिए तेल एवं घृत मर्दन की आवश्यकता है। तैलादि मर्दन से स्नायु-चर्मादि के माध्यम से तैलादि पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर शरीर को लचीला, दृढ, सुन्दर बनाता है। तैलादि शुद्ध होना चाहिए।

स्नान से लाभ -

दीपनं वृष्यामयुष्यं स्नानमोजो बलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेद तन्द्रा तृड्दाह पापनुत्॥ 70
बाह्यैश्च सेकै: शीताद्यैरुष्माऽन्तर्याति पीडित:।
नरस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पाचक:॥ 71
प्रात: स्नानमलञ्च पापहरणं दु:स्वप्नविध्वंसनं।
शौच्यस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसाम्॥
रूपद्योतकरं शरीर सुखदं कामाग्नि संदीपनं।
स्त्रीणां मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणा:॥ 72

स्नान करने से अग्नि प्रदिप्त होती है और वह (स्नान) आयुवर्धक एवं अत्यधिक शक्तिवर्धक होता है। स्नान कण्डू (खुजली), मल, श्रम, पसीना, ग्लानी, तृष्णा, दाह एवं पाप नाशक है। शीतल जल स्नान से शरीर के अंतर्गत उष्णता अंदर बढ जाती है इसलिए स्नान किए हुए को अग्नि प्रदिप्त होती है। प्रात:काल स्नान करने से मल दूर होता है और दु:स्वप्नों का दोष दूर होता है। स्नान से पवित्रता बढती है, मलनाशक है, कांतिवर्धक है। स्नान से रूप तेजपुंज होकर शरीर सुखदायक, कामवर्धक, श्रमनाशक होता है।

तुष्टिं पुष्टिं कांतिमारोग्यमायुससौम्यं, दोषाणं साम्यमग्नेश्य दीप्तिम्।
तन्द्रा निद्रा पाप शान्ति पवित्रम्, स्नानं कुर्यादिन्नकांक्षमतौव॥

स्नान करने से मन में संतोष पैदा होता है, कांति बढती है स्वस्थ एवं दीर्घायु होती है, शुचिता प्राप्त होती है, दोषों का साम्य होता है, अग्नि तीव्र हो जाती है, आलस्य निद्रा दूर होती है, पाप का उपशमन कर शरीर को पवित्र करता है, भोजन की इच्छा उत्पन्न करता है, इसलिए पवित्र स्नान अवश्य करना चाहिए।

स्नान के जल -

शीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्त प्रशान्तिकृत्।
तदेवोष्णेन तोयेन बल्यं वातकफापहम्॥ 73
उष्णाम्बुनाऽध: कायस्य परिषेको बलावह:।
तेनैव चोत्तमांगस्य बलदृत्केश चक्षुषाम्॥ 74
शिर: स्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाऽम्बुना सदा।

वातश्लेष्म प्रकोपे तु हितं तच्च प्रकीर्तितम् ॥ 75
यः सदाऽऽमलकैः स्नानं करोति स विनिश्चितम्।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षतं नरः ॥ 76
अशीतनाम्भसा स्नानं पयः पानं युवस्त्रियः ।
एतद्धि मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम्॥ 77

शीत जल स्नान से रक्त-पित्त, रक्तदोष और पित्तदोष का शमन हेाता है। उष्ण जल से स्नान करने पर बल प्राप्त होता है, वात,कफ का नाश होता है। उष्ण जल से गर्दन के नीचे से स्नान करने पर बल या शक्ति प्राप्त होती है। परंतु सिर पर गरम जल से स्नान करने पर बालों एवं नेत्रों की शक्ति कम होती है। अतिगर्म जल से सिर पर स्नान करना आँखों के लिए अहितकर है तथापि वात एवं कफ प्रकोप को दूर करता है। जो हमेशा आँवला का चूर्ण शरीर पर लगाकर स्नान करता है वह सौ साल की आयु पाता है। शरीर पर सिकुडन नहीं पडते हैं, बाल नहीं पकते हैं।

हमेशा उष्णोदक से स्नान एवं दूध प्राशन से, स्निग्ध एवं अल्प भोजन करना बहुत हितकर है।

स्नान के अयोग्य व्यक्ति

स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णानिलार्तिषु।
आध्मान पीनस जीर्ण भुक्त वत्सु च गर्हितम्॥ 78

ज्वर, अतिसार, नेत्ररोग, कर्णरोग, पेट फूलना, पीनस (सर्दी), अजीर्ण आदि विकार जिसको है और जिसने आहार किया है उस व्यक्ति के लिए स्नान करना हितकर नहीं है।

स्नान के अनन्तर की क्रिया -

स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेण तनुमार्जनम्।
कांतिप्रदं शरीरस्य कण्डूत्वग्दोष नाशनम्॥ 79

स्नान करने के तुरंत बाद वस्त्र से पोंछ लेने पर शरीर की खुजली एवं त्वचारोग नष्ट हो जाते हैं एवं कांति बढती है।

विभिन्न वस्त्रों के विभिन्न लाभ -

कोशेयं चित्रवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च।
वातश्लेष्महरं शीतकाले तत्तु विधारयेत्॥ 80
मेध्यं सुशीतं पित्तध्नं काषायं वस्त्र मुच्यते।
तद्धारयेदुष्णकाले तच्चापि लघु शस्यते॥ 81

शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम्।
न चोष्णं न च वा शीतं तच्च वर्षासु धारयेत्॥ 82
यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीमदानन्दवर्धन्।
त्वच्यं वशीकरं रुच्यं निर्मलमम्बरम्॥ 83
कदाऽपि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम्।
तत्तु कण्डूक्रिमिकरं ग्लान्य लक्ष्मीकरं परम्॥ 84

कौशेय चित्र-विचित्र वर्ण के तथा लाल रङ्ग के वस्त्र कफ-वात दोषनाशक हैं इसलिए इनको सर्दी के दिनों में उपयोग करना चाहिए।

भगवा वस्त्र बुद्धिवर्धक, शीतल एवं पित्तनाशक होते हैं, इसलिए इसे गर्मी के दिनों में उपयोग करना चाहिए।

शुभ्र वस्त्र शुभ होकर सर्दी-गर्मी दोनों का निवारक है, इसका वर्षाकाल में उपयोग करना चाहिए। नया एवं स्वच्छ (निर्मल) वस्त्र यशस्वी, मनोवांछित पूरक, आयु, लक्ष्मी और आनन्द को बढाने वाला होता है चर्म को हितावह, वश्यकारक एवं भ्रांतिप्रद होता है। मलिन वस्त्र जीवाणु युक्त होता है। उसे धारण करने से खुजली व ग्लानि और दरिद्र कारक होता है इसलिए सज्जन लोग उसका त्याग करते हैं।

सुगन्धित द्रव्य (उबटन) लेपन से लाभ -

कुंकुम चन्दनं चापि कृष्णागुरुविमिश्रितम्।
उष्णं वातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते॥ 85
चन्दनं घनसारेण वालकेन च मिश्रितम्।
सुगन्धि परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते॥ 86
चन्दनं घुसृणोपेतं मृगनाभि समायुतम्।
न चोष्णं न शीतं वा वर्षाकाले तदिष्यते॥ 87
अनुलेपस्तृषामूर्च्छा दुर्गन्ध श्रम दाहजित्।
सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्ण कान्त्योज्बल वर्धनः।
स्नानानर्हस्य लोकस्यत्वलेपोऽपि नो हितः॥ 88

केशर, चंदन एवं कृष्णागुरु इनके मिश्रण से बना हुआ लेपन उष्ण होकर कफ-वात नाशक है, इसलिए उसे ठण्ड के दिन में लगाना चाहिए।

खस (धन्वंतरी घास) कपूर एवं चंदन इनके मिश्रण से तैयार किया हुआ लेपन विशेष सुगंधि, ठण्डा होता है इसलिए इसे गर्मियों के दिनों में लगाना चाहिए।

केशर एवं कस्तुरी मिश्रित चंदन का लेप अतिशीत और अतिउष्ण न होने से

इसे वर्षाकाल में लगाना चाहिए।

गंध लेपन से प्यास, मूर्छा, शरीर दुर्गन्ध, श्रम, दाहादिक की शांति होती है एवं सौभाग्य तेज त्वचा का वर्ण, कांति, ओज और बल बढता है। ऊपर जिसको स्नान वर्ज कहा है उसका गंध लेपन भी वर्ज है।

पुष्पमाला धारण करने से लाभ -

सुगन्धि पुष्प: पत्राणां धारणं कान्तिकारणम्।
पापरक्षोग्रह हरं कामौज: श्री विवर्धनम्॥ 89

सुवासित पुष्प, सुवासित पत्ते आदि का बना हुआ हार धारण करने से अङ्गकांति उत्तम हेाती है। पाप भूत-पिशाच, राक्षस एवं ग्रह बाधा दूर होती है तथा काम, ओज और लक्ष्मी बढती है।

अलंकार धारण करने से लाभ -

भूषणैर्भुषयेदंगं यथायोग्यं विधानत:।
शुचि सौभाग्य संतोषदायकं काञ्चनं स्मृतम्॥ 90
ग्रहदुष्टिहरं पुष्टिकरं दु:स्वप्न नाशनम्।
पापदौर्भाग्यशमनं रत्नभरण धारणम्॥ 91

शरीर पर यथायोग्य अलंकार धारण करने चाहिए। सुवर्णालंकार पवित्रता, सौभाग्य एवं आनंद देने वाले होते हैं।

रत्नों के अलंकार ग्रह दोष नाशक, पुष्टिकारक एवं दु:स्वप्न नाशक होकर पाप और दुर्भाग्य नाशक होता है।

रत्नालंकार से लाभ -

माणिक्यं तरणे: सुनिर्मलमथो चंद्रस्य मुक्ताफलं।
माहेयस्य च विद्रमो निगदित: सौम्यस्य गारुत्मतम्॥
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शने।
नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेद वैडूर्यके॥ 92
वास: स्त्रगादिरत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम्।
रक्षोध्नमर्थ्यं मोजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम्॥ 93

सूर्य को माणिक, चंद्र को उत्तम मोती, मंगल को मूँगा, बुध को पाँच रत्न, गुरु को पुष्पराग, शुक्र को हीरा, शनि को नीलमणि, राहु को गोमेद और केतु को वैडूर्य रत्न प्रिय होता है। माला और रत्नालंकार धारण करने से मन आनंददायक हेाता है, इससे राक्षस की बाधा नहीं होती है। द्रव्य तेज एवं सौभाग्य बढता है।

पैदल यात्रा के गुण -

अध्वा वर्ण कफ स्थौल्य सौकुमार्य विनाशन:।
पादचंक्रमणं नाति देह पीडाकारं भवेत्॥ 223
तदायुर्बल मेघाग्नि प्रदीर्यान्द्रिय बोधनम्।
आस्यवर्ण कफ स्थौल्य सौकुमार्य सुखप्रदम्।
उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवात् कफापट्टम्॥ 224
पादाभ्यामनुपानदभ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम्।
अनोरोग्य मनायुष्यमिन्द्रियध्नम दृष्टिदम्॥ 225
छात्रस्य धारणं वर्षातपाव रजोपट्टम्।
हिमहनं हितमक्षणोश्च मांगल्यमपि कीर्तितम्॥ 226
सत्त्वोत्साहबलं स्थैर्यंवीर्यं धैर्य विवर्धनम्।
अवष्टम्भकरं चापि भयध्नं दण्डधारणम्॥ 227

मार्ग भ्रमण से शरीर कांति, कफ, मेद, स्थूलता, सुकुमार अवस्था का नाश हेाता है। पैदल चलने से शरीर को विशेष आयास (कष्ट) नहीं होता। इससे आयु, बल-बुद्धि और अग्नि बढती है और यह इंद्रिय बोधक है। शिरस्त्राण (पगडी) कांतिकारक, बालों को हितकारक और धुली-वात-कफ को दूर करने वाला है। हमेशा अनवानी (बिना पादत्राण) से चलना आरोग्य और आयु हानिकारक और दृष्टि व इंद्रिय नाशक है। छाता (छत्र) पकडना धूप-धूली-वर्षा (पानी आना) और शीत निवारक है। आँखों के लिए हितकर और मंगलकारक है। हाथ में लाठी (लकडी की) लेना सत्त्व, उत्साह, बल, स्थिरता, धैर्य और पराक्रम बढाती है, भय नाशक होकर आधार उत्पन्न होता है।

जीवों की स्वाभाविक आवश्यकता -

शरीरे जायते नित्यं वाञ्छा नृणां चतुर्विधा।
बुभुक्षा च पिपासा च सुषुप्सा सुरतस्पृहा॥ 100
भोजनेच्छाविधातात्स्यादङ्गमर्दोऽरुचि: श्रम:।
तन्द्रा लोचन दौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षय:॥ 101
विघातेन पिपासाया: शोष: कण्ठास्ययोर्भवेत्।
श्रवणस्यावरोधश्च रक्त शोषोहृदि व्यथा॥ 102
निद्रा विद्यततो जृम्भा शिरोलोचन गौरवम्।
अंगमर्दस्तथा तन्द्रा स्यादन्नपाक एव च॥ 103

बुभुक्षितो न योऽश्नातितस्ययाऽहारेन्धनक्षयात्।
मन्दीभवति कामाग्निर्नाग्निर्बर्धेन्निरिन्धनः॥ 104
आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः पचति।
दोषक्षये च धातून्पचति च धातुक्षये प्राणान्॥ 105
आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः।
स्मृत्यायुः शक्ति वर्णोजः सत्त्वशोभाविवर्धकः॥ 106
यथोक्तगुणसंपन्नमुपसेवेत भोजनम्।
विचार्य देशकालादीन्कालयोरूभयोरपि।। 107

बुभुक्षा (खाने की इच्छा), पीपासा (पानी पीने की इच्छा), सुषुप्सा (नींद लेने की इच्छा), स्पृहा (रति करने की इच्छा) ये चार प्रकार की इच्छायें मानव को स्वभाव से ही होती हैं। आहार की इच्छा का निरोध करने से शरीर में दर्द, सर्वाङ्गशूल, अरुचि, श्रम, ग्लानि, दृष्टि दुर्बल, जठराग्नि प्रखर होते हैं। ये सब धातुयें संतृप्त होते हैं और बलक्षय होता है।

तृष्णा का विरोध करने से मुख मलीन होता है, कण्ठ सुख जाता है, कान में बहरापन आता है, रक्त में द्रवांश कम होता है, हृदय में वेदना होती है, निद्रानाश होता है, जंभाई आती है, मस्तक में और आँखों में जडत्व आता है, बदन दर्द, ग्लानि एवं अपचादि विकार होते हैं। जिस प्रकार ईंधन के अभाव में अग्नि प्रज्वलित नहीं होती है, उसी प्रकार भुख लगने पर आहार न लेने से जठराग्नि मंद होती है। इसलिए भूख लगने पर आहार करना चाहिए। उसी प्रकार आहार नहीं लिया तो जठराग्नि कफादि दोषों को नष्ट करती है। पश्चात् धातुओं का क्षय करती है और अन्त में प्राणों को ही नष्ट करती है। आहार मानव के लिए (सभी प्राणियों के लिए) तृप्तिदायक होने से उसी से तत्काल बल बढता है। देह का रक्षण होता है। स्मरण शक्ति, आयु, बल, वर्ण, ओज, प्राण एवं शोभा को वृद्धिंगत करने वाला है। देशकाल का विचार करके स्वयं की प्रकृति के अनुकूल यथायोग्य गुण सम्पन्न आहार दिन में दो समय करना चाहिए।

आहार का योग्य समय एवं क्षेत्र -

सायं प्रातःमनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥ 108
याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्।
याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः॥ 109

क्षुत्संभवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च।
काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः॥ 110
उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्॥ 111

मानव के लिए दो समय आहार करना आवचश्यक हैं, बीच में भोजन नहीं करना चाहिए। आहार एक प्रहर तक अन्न रस बनाता है। दो प्रहर के अन्दर पुनः आहार लेना आवश्यक है, दो प्रहर बाद आहार लेने से बलक्षय होता है। अन्नरस, दोष एवं मल इनका यथायोग्य पाचन होने से भूख लगती है, भूख लगने पर अन्न ग्रहण करना चाहिए। वही अन्न ग्रहणकाल है। शुद्ध डकार आना, मलमूत्रादि योग्य प्रवृत्ति होना, उत्साही रहना, शरीर हल्का होना, भूख-प्यास लगना, यह आहार का पूर्ण पाचन का लक्षण होता है।

आहारं तु रहः कुर्यान्निहारमपि सर्वदा।
उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशे ह्रीयते श्रिया॥ 112
ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु।
श्लंष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा॥ 113
''आहारनहरिविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः''

हमेशा आहार एकांत स्थान पर करना चाहिए। शौच भी एकांत स्थान में करना चाहिए। ऐसे करने से मानव लक्ष्मीयुक्त होता है। जो ज्वर युक्त है अथवा नूतन ज्वरयुक्त है उसके लिए और सबके लिए सूर्यास्त से पहले आहार ग्रहण करना चाहिए। इसका कारण यह है कि उस समय में कफ दोष कम होने से शरीर में गर्मी बढकर अग्नि बलवान् होती है और अन्न का योग्य पाचन होता है।

हीनदीनक्षुधार्तानां पापपाखण्डरोगिणाम्।
कुक्कुटादिशुनांदृष्टिर्भोजननैव शोभना॥ 114
पितृमातृसुहृद्वैद्यपाककृद्धं सबर्हिणाम्।
सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥ 115

नीच कुल का मानव, भिखारी, पापकर्मी, भूखा, पाखण्डी, कुत्ता एवं कुक्कुट आदि की दृष्टि में भोजन का अन्न नहीं आना चाहिए। माँ-बाप, मित्र, पाकसिद्धि करने वाला (आचारी), राजहंस, मोर, सारस पक्षी और चकोर पक्षी इनकी दृष्टि में भोजन पात्र आ गया तो उत्तम है।

आहार करने योग्य बर्तनों (पात्रों) के लक्षण -

दोषहृद दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजन भाजनम्।
रोप्यं भवति चक्षुस्यं पित्तहृत्कफवातकृत्॥ 116
कांस्यं बुद्धिप्रदं रूच्यं रक्तपित्तप्रसादनम्।
पैत्तलं वातकृद्रक्षमुष्णं क्रिकफप्रणुत्॥ 117
आयासे कान्तपात्रे च भोजने सिद्धिकारकम्।
शोथपाण्डुहरं बल्यं कामलापहमुत्तमम्॥ 118
शैलजे मृण्मयं पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम्।
दारुद्भवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकृत्तथा॥ 119
पात्रं पात्रमयं रुच्यं दीपनं विषपापनुत्।
जलपात्रं तु ताम्रस्य तदाभावे मृदो हितम्॥ 120
पात्रं पवित्रं शीतं च घटितं स्फटिकेन यत्।
काचेन रचितं तद्वत्तथा वैदूर्यसंभवम्॥ 121

आहार के लिए सुवर्ण पात्र दोषनाशक, दृष्टि उत्तम करने वाले, पथ्यकारक होता है। रौप्य पात्र आँख के लिए हितकर, पित्तनाशक व कफ-वात नाशक है। काँस्यपात्र बुद्धिदायक, रुचि उत्पन्न करने वाले और रक्त पित्त की शुद्धि होकर वात-पित्त, कारक रुक्ष एवं उष्ण होकर कृमि, कफ नाशक है।

लोह पात्र अगर लोह चुम्बक पात्र हो तो वह सिद्धिदायक, पाँडुरोग, सूजननाशक, शक्तिवर्धक, कामलानाशक हैं।

मृतपात्र अगर पत्थर के पात्र हो तो अलक्ष्मीकारक है, लकडी का पात्र विशेषत: रुचिकारक, कफकारक है।

केला आदि के पात्र रुचिकारक, अग्निदायक एवं विषदोष, पापदोष नाशक है।

जल पीने के लिए ताम्र पात्र उत्तम है। मिट्टी का पात्र ठीक है, स्फटिक पात्र, कांच पात्र, एवं वैडूर्यरत्नपात्र शीत एवं पवित्र होता है।

-: स्वास्थ्यामृतम् :-

सात्विक भोजन, शारीरिक श्रम (योगासन), मानसिक स्थिरता (ध्यान), भाव की पवित्रता (धर्म) से शरीर-मन आत्मा को शक्ति मिलती है जिससे रोग भयभित होते हैं।

परिच्छेद - 3

स्वास्थ्य साधन

* ''स्वास्थ्य ही सर्वोत्तम धन है।'' **- इमर्सन**
* ''जीव केवल जीने का नाम ही नहीं, अपितु स्वास्थ्य लाभ का नाम है।'' **- मार्शल**
* ''कोई व्यक्ति वास्तविक अर्थों में तब तक स्वस्थ नहीं जब तक खुले वातावरण में हरी घास पर खडा होकर शारीरिक सत्ता के सामान्य सुख के बदले अपने सृष्टा का कृतज्ञ नहीं होता हो।'' - टी. डब्ल्यू. हिग्गिन्सन
* ''स्थिर चित्त और शुभाचारी बनो, तुम स्वस्थ रहोगे।'' **- फ्रैंकलिन**
* ''मैं सकुशल था, मैंने और अच्छा बनना चाहा, दवा खायी और मर गया।'' **- एपिताफ**
* ''जल, वायु, स्वच्छता-अनमोल वस्तुएँ है मेरे नुस्खे में।'' **- नेपोलियन**
* ''मेरा अनुमान है कि प्रत्येक मनुष्य शतजीवी हो सकता है।'' **- डॉ. द' बोसी**

जोसियाह क्रिन्सी से एक सुविख्यात चिकित्सक जैक्सन ने पूछा - ''क्यों श्रीमान्! आप कब तक और जीवित रहने की आशा रखते हैं?'' उत्तर मिला - ''जब तक वैद्य की जरुरत नहीं पडती।'' इस पर जैक्सन ने पूछा - ''इससे पहले आपने डॉक्टर को कब बुलाया था?'' तनिक मुस्कराकर क्रिन्सी ने कहा - ''ठीक 86 वर्ष पूर्व।'' और ठीक यही उनकी आयु थी।

एक फ्रांसीसी अधिकारी का विश्वास है - ''लोग यूँ ही नहीं मरते, वे स्वयं अपने को मारते हैं।''

हेनरी जेन्किन्स सन् 1500 में यॉर्कशायर (इंग्लैण्ड) में उत्पन्न हुआ और 170 वर्ष का होकर मरा। वह मुँह अंधेरे उठता, नाश्ते से पहले आधा सेर पानी पीता और अधिकतर ठण्डा खाना खाता, वह बडा धैर्यवान था।

दीर्घायु में थॉमस पार का जीवन एक दृष्टान्त मानना चाहिए। इस इंग्लैण्डवासी ने 1473 ईसवीं में जन्म लिया, पहला विवाह 88 वर्ष की आयु में किया, दूसरा विवाह 120 वर्ष की आयु में हुआ। 145 वर्ष की आयु में वह दौडों में शामील होने के योग्य था। मूसल से अनाज कूट लेता था और सभी प्रकार का श्रम कर लेता था।

दिन-रात में केवल दो बार ही खाना लेता, किंतु वह अत्यन्त सादा होता। उसकी जीवन कथा का लेखक लिखता है- ''उसकी मृत्यु का कारण जलवायु का दूषित होना था, क्योंकि वह खुला वातावरण छोडकर लन्दन की दूषित जलवायु में आ बसा। उसे एक विलासप्रिय परिवार में रहना पडा जहाँ बढियाँ भोजन और शराब उडती थी। उसके शरीर की प्राकृतिक प्रक्रिया पर बोझ पडा, फेफडों में अवरोध हो गया, परिणामस्वरूप शरीर ढलने लगा। जलवायु का ऐसा परिवर्तन न होता तो शायद वह 1635 में न मरता। गैलन की मृत्यु 140 वर्ष की आयु में सन् 271 में हुई। उसके स्वयं के कथनानुसार वह तनिक दुर्बल शरीर का था, किंतु शांतप्रिय और भूख से कम खाने के कारण वह दीर्घायु भोग सका। बोस्टन से लगभग 8 मील दूर एक छोटे नगर में हाल ही में वृद्ध रहता था जो 81 वर्ष की आयु तक सर्वथा स्वस्थ और बलिष्ठ था। उसकी सीधी सुदृढ गति देखकर युवक लोग भी लजा उठते थे। कुछ समय पूर्व उससे उसका सहपाठी मिलने आया जो उससे कुछ ही वर्ष छोटा था। उसने उस वृद्ध मित्र को स्वस्थ देखकर अचम्भा किया तो वह बोल उठा - ''अरे ! चाहे मैं युवा लगता हूँ, किंतु पूर्व जैसा नहीं रहा। पहले मैं प्रतिमास सैर-सपाटे के लिए बोस्टन जाया करता था, पिछले सप्ताह मुझे गाडी में चढकर आना पडा।'' मित्र और विस्मित हुआ - ''तो क्या पहले पैदल जाते थे ?'' वृद्ध शांत भाव से जरा उदासी में बोला - ''हाँ, भई पैदल, मगर अब तो बेहतर है कि बिस्तर पर लेटो और चलते बनो। देखो न 81 वर्षों की उम्र भी कोई उम्र है? मैं हूँ कि गाडी का सहारा लेना पडा।''

जब सिकन्दर ने पौरष पर विजय पायी तो उसने उस हाथी को मांगा जिस पर बैठकर राजा पौरष लडा था। हाथी का नाम था -''ओजेक्स''। सिकंदर ने हाथी पर ये शब्द लिखवाकर छोड दिया - सूर्यपुत्र अलैक्जैण्डर ने ओजेक्स को सूर्य के नाम किया। वह हाथी 350 वर्ष बाद आलेख सहित मिला।

कुवीयर के मत में ह्वेल मछलियाँ सम्भवत: एक सहस्त्र वर्श की आयु तक जीवित रहती हैं।

एक बार वीयना में एक पशु 104 वर्ष की आयु भोगकर मरा। कौए प्राय: शतजीवी होते हैं। हंस 300 वर्षान्त जीवित रहते हैं। लमढींग भी दीर्घायु होते हैं। पता लगा कि एक कछुआ 107 साल का होकर मरा।

जब से इतिहास लिखा जाने लगा है, लोग इसी खोज में लगे हैं कि मृत्यु पर विजय कैसे प्राप्त करें ? प्राचीन मिस्रवासी कहा करते थे कि बार-बार वमन करके पसीना लेते रहो, रिवाज इस सीमा को पहुँच गया कि लोग मिलते समय भी हालचाल

पूछते हुए कहते - सुनाओ, पसीने का हाल क्या हैं ? अर्थात् वह पसीने से ही स्वास्थ्य स्थिति का अनुमान लगा लेते थे।

इससे बढकर मानव के लिए क्या शुभ होगा कि अवसर हो तो वह वक्ष तानकर बाधाओं से टकराये। युवा शक्ति की शान का विकास शक्तिस्रोत से होता है। दुर्बलता कैसी भी हो मनुष्य को तुच्छ बना देती है। यह दुर्बलता ही कुरुपता है, चाहे वह दुर्बलता शारीरिक हो, मानसिक हो या बौद्धिक। सर्वोत्तम अनुभूति यही है कि मनुष्य को कठिनाइयों पर विजय पाने की अपनी योग्यता का ज्ञान हो।

जीवन की महान् विजयों के अधिकारी वही हैं जो चुस्त-चालाक और स्वस्थ पुष्ट हो। यह पुष्टता बडे-बडे पुष्ठों में नहीं, ऐच्छिक और स्नायविक पुष्टता है। महान् कार्य कौन कर सकते हैं ? लार्ड ब्राहम जैसे व्यक्ति जो निरन्तर 176 घण्टे काम कर सकें। नेपोलियन जैसे लोग 20-20 घण्टे घोडे पर गुजार दें। फ्रैंकलिन जैसे मानव जो 70 वर्ष की आयु में भी खुली हवा में डेरा डाल सके। ग्लैडस्टोन जैसे व्यक्ति जो 84 वर्ष की आयु में भी साम्राज्य नौका की पतवार दृढता से संभाल सके और प्रतिदिन मीलों पैदल चल सकें। 85 वर्ष की आयु में भी बडे-बडे पेड काटकर गिरा सकें।

स्वास्थ्य की समानता भली कौनसी सफलता कर सकती है ? एडिनबरा के विद्यार्थियों से कारलॉयल ने कहा था - ''स्वास्थ्य की तुलना में भला करोडों रुपयें और सोने की इटों का क्या महत्त्व है?''

घुडदौड के घोडों को छकडा खींचने वाले घोडों की भाँति खिलाना-पिलाना नहीं चाहिए। बौद्धिक श्रम करने वाले को भोजन ऐसा होना चाहिए जो स्नायविक शक्ति का संचार करे। खुराक में फास्फोरस और एल्ब्यूमिन होना अति आवश्यक है, जिससे मस्तिष्क में भूरी-भूरी सामग्री नये सिरे से बनती रहे। खुराक तो शारीरिक अभाव को देखकर ही उसकी पूर्ति के साधन रूप में होनी चाहिए।

पश्चिमी प्रान्त में एक व्यक्ति किसी भोज में सम्मिलित हुआ और भरपेट आयडटर मछलियाँ, भूना हुआ मांस, मूर्गा, चूजा और लोब्स्टर, कीमा, प्लमपुडिंग, आइसक्रीम, केक, अखरोट, किशमिश, जैसा माल उडाया और अगले दिन वह बिस्तर पर मरा पडा मिला। डॉक्टरी जाँच के अनुसार उसके दिल की धडकन बन्द हो गई थी।

खाना खाने के साथ पानी आदि नहीं पीना चाहिए क्योंकि अन्दरुनी अङ्गों से मिलने वाला रस उस भोजन की पाचन क्रिया में अत्यन्त लाभकारी होता है। चर्बीदार गोश्त और हलवे आदि से यथासम्भव बचना चाहिए क्योंकि इन्हें पचाने में शरीर को

कठोर श्रम करना पडता है। जब कोई व्यक्ति भारी थकान से चूर होकर भोजन करे तो भरपेट खाना नहीं लेना चाहिए क्योंकि उस समय पाचन अङ्ग अपना काम अनुकूल ढंग से नहीं कर पाते।

प्रो. लोरेन्जो एन. फॉलर एक मस्तिष्क विशेषज्ञ हुए हैं, जिन्होंने दीर्घायु के लिए कुछ नियम इस प्रकार वर्णित किये हैं - ''कठोर श्रम करो किंतु सरलता से। क्रोध और दु:ख से बचो, अपनी योग्यता से भरपूर लाभ उठाओ, अधिक बोझ और दबाव वाला जीवन मत बनाओ। अपनी आय और सामर्थ्य के भीतर रहो। दिन में तीन बार खाओ और अधिकतर फल, अखरोट, अनाज तथा दूध का सेवन करो। प्रारम्भ से ही परहेज रखो। तम्बाकू न पियो और न चबाओ। नित्य व्यायाम करो और स्मरण रखो कि निष्ठा के बाद पवित्रता का स्थान है। चाय और कहवा जैसी नशीली वस्तुओं का सेवन मत करो। बिस्तर पर जाओ तो भरपूर नींद लो। सप्ताह में एक बार अवकाश लो। इस प्रकार समझिये कि आप 80 वर्ष जी लेंगे।'' वाल्ट विटमैन लिखते हैं - ''12 वर्ष पूर्व कैम्बडन में आया तो मरणासन्न था, किंतु मैं प्रतिदिन देहात में निकल जाता था। नंगे बदन धूप तापता, पक्षी और गिलहरियों में रहता, मछलियों से खेलता और प्रकृति से मैंने स्वास्थ्य छीन लिया।''

श्रान्त प्रकृति को पुनर्जन्म देने वाली प्रिय निद्रा एक वरदान है।

स्वास्थ्य के तीन बडे स्रोत हैं - पानी, हवा और दूध। मुक्तहस्त से इनका उपयोग कीजिए। विचार ही है जो शरीर को शक्ति प्रदान करता है। नपी-तुली सुसंस्कृत और सुनियमित विचारधारा ही क्रियाशीलता बनकर प्रबल वेग से शारीरिक रचना पर प्रभाव डालती है। दुर्बल और निकृष्ट विचार शरीर को भी क्षीण कर देंगे जबकि नि:स्वार्थ प्रयत्न और उच्चादर्श के विचार शरीर को सशक्त बनाते हैं।

प्रत्येक विचार की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक धर्म है। दुष्टप्रवृत्तियाँ अन्तरात्मा में दूषण भर देती है जो कि शरीर में फूटने लगती है। चिंतन और विचारधारा को जैसी खुराक दी जायेगी वैसी ही कुरूपता और सौन्दर्य में प्रस्फुटित होगा।

शुभ कर्मों और क्रियाओं के फलस्वरूप दीर्घायु मिलती है। ऊँचे विचार, उच्च जीवन यापन, उदारता और नि:स्वार्थ प्रेम से आयु बढती है जबकि प्रतिकूल आचरण से आयु क्षीण होती है।

प्राय: पवित्रता का पर्यायवाची प्रसन्नता होती है। झगडालू, उपद्रवी और रूग्ण आत्मा के लिए सत्कर्मी बनना कठिन बात हैं। मनोमस्तिष्क का संचालन यदि उचित ढंग से किया जाये तो नैतिक विचारधारा अवश्य स्वच्छ होगी। शारीरिक,

बौद्धिक और नैतिक जीवन का इसी में महत्त्व है कि ये तीनों परस्पर गुथे हुए हों, जो बात एक पर प्रभाव डालेगी, वह दूसरे पर भी अवश्य प्रभावित होती है।

सफलता एक पौष्टिक पदार्थ है क्योंकि सत्कार्य करने वाली अंगिक प्रक्रिया, साहस, उमंग और कामना सन्तुलन बनाये रखती है और सन्तुलन ही स्वास्थ्य है।

जो व्यक्ति अपने नियत लक्ष्य को पा लेता है, वह पूर्वापेक्षा अधिक सशक्त और अधिक सुख अनुभव करने लगता है। वांछित वस्तु की प्राप्ति से सुख मिलता है सभी जानते हैं कि उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर चिर रोगी भी स्वस्थ युवा झलकने लगता है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् -

प्रत्येक जीव का परमलक्ष्य सुख एवं शान्ति प्राप्त करना है। शाश्वतिक सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए प्रबल पुरूषार्थ चाहिये। पुरूषार्थ के लिए मानसिक एवं शारीरिक शक्ति चाहिए। इस शक्ति के लिए निरोग स्वास्थ युक्त शरीर चाहिए और शरीर को दृढ, कार्यक्षम निरोग रखने के लिए स्वास्थ्य चाहिए।

चतु: प्रकारा: प्रतिपादिता इमे। समस्तरोगास्तनुविघ्नकारिण:॥
ततश्चतुर्वर्गविधानसाधनं । शरीरमाद्यं परिरक्ष्यते बुधै: ॥ 61

''कल्याणकारक'' अध्याय - 7

चार प्रकार के रोग होते हैं। यह सम्पूर्ण रोग शरीर को बाधा पहुँचाने वाले हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार पुरूषार्थ के लिए शरीर प्रधान साधन-भूत है। शरीर के बिना चारों पुरूषार्थ सिद्ध नहीं हो सकते हैं। कहा है- **''धर्मार्थकाममोक्षाणम्, आरोग्यं मूलमुत्तमम्।''** धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के लिए आरोग्य उत्तम मूल कारण है। इसलिए नीतिकारों ने यथार्थ से कहा है-

''शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्'' निश्चय से धर्म साधन के लिए शरीर प्रथम एवं प्रधान माध्यम है। इसलिए ऐहिक एवं पारलौकिक सुख-शांति के लिए स्वास्थ्य परम आवश्यक है। आचार्य ने कहा है -

साध्या: कृच्छ्रतरा भवंत्यविहिता: कृच्छ्राश्च याप्यात्मका:।
याप्यास्तेऽपि तथाप्यसाध्यनिभृता: साक्षादसाध्या अपि ॥
प्राणान्हंतुमिहोद्यता इति पुरा श्री पूज्यपादार्पिता ।
द्वाक्यात्क्षिप्रमिहाग्निसर्पसदृशान् रोगान् सदा साधयेत् ॥ 62

शीघ्र और ठीक-ठीक चिकित्सा न करने से, अर्थात् रोगों की चिकित्सा, शास्त्रोक्तपद्धति के अनुसार, शीघ्र न करने से, जो रोग सुखसाध्य हैं वे ही कृच्छसाध्य हो

जाते हैं। जो कृच्छसाध्य हैं, वे याप्यत्व को जो याप्त हैं वे अनुपक्रमत्व अवस्था को प्राप्त करते हैं और जो अनुपक्रम हैं वे तत्क्षण ही प्राण का घात करते हैं। इस प्रकार प्राचीनकाल में आचार्य श्री पूज्यपाद ने कहा है। इसलिए अग्नि और सर्प के समान, शीघ्र अमूल्यप्राण को नष्ट करने वाले रोगों को, हमेशा शीघ्र ही योग्य चिकित्सा द्वारा ठीक करें।

मुनियों को आयुर्वेद की आवश्यकता -

आरोग्यशास्त्रमधिगम्य मुनिर्विपश्चित् ।
स्वास्थ्यं स साधयति सिद्धसुखैक हेतुम् ।।
अन्यस्स्वदोषकृत रोगनिपीडितांगो ।
वध्नाति कर्म निजदुष्परिणाम भेदात् ।। 89

"कल्याणकारक" अध्याय - 20

जो विद्वान मुनि आरोग्यशास्त्र को अच्छी तरह जानकर उसी प्रकार का आहार विहार रखते हुए स्वास्थ्य रक्षा कर लेता है, वह सिद्ध सुख के मार्ग को प्राप्त कर लेता है। जो स्वास्थ्य रक्षा विधान को न जानकर, अपने आरोग्य की रक्षा नहीं कर पाता है वह अनेंक दोषों से उत्पन्न रोगों से पीडित होकर अनेक प्रकार के दुष्परिणामों से कर्मबन्ध कर लेता है।

आरोग्यकी आवश्यकता -

न धर्मस्य कर्ता न चार्थस्य हर्ता न कामस्य भोक्ता न मोक्षस्य पाता।
नरो बुद्धिमान् धीरसत्वोऽपि रोगी यतस्तद्विनाशद्धवेन्नैव मर्त्य : ।। 90

मनुष्य बुद्धिमान, दृढमनस्क होने पर भी यदि रोगी हो तो वह न धर्म कर सकता है, न धन कमा सकता है और न मोक्ष साधन कर सकता है। अर्थात् रोगी धर्मार्थकाममोक्षरूपी चतु:पुरुषार्थ को साधन नहीं कर सकता। जो पुरुषार्थ को प्राप्त नहीं कर पाता है वह मनुष्यभव में जन्म लेने पर भी मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है क्योंकि मनुष्यभव की सफलता पुरुषार्थ प्राप्त करने से ही होती है।

इत्युग्रादित्याचार्यवर्यप्रणीतं शास्त्रं-शस्त्रं कर्मणां मर्मभेदी ।
ज्ञात्वा मर्त्यैस्सर्वकर्मप्रवीणै: लभ्यंतैके धर्मकामार्थमोक्षा: ।। 91

इस प्रकार उग्रादित्याचार्यवर्य के द्वारा प्रतिपादित यह शास्त्र जो कर्मों के मर्म-भेदन करने के लिए शस्त्र के समान है इसे सर्वकर्मों में प्रवीण कोई-कोई मनुष्य जानकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् इस शास्त्र में प्रवीण होकर इसके अनुसार अपने आरोग्य को रक्षण करके, पुरुषार्थों को प्राप्त करना चाहिए।

रोगों का कारण पूर्वार्जित कर्म -

प्रत्येक कार्य के लिए अंतरङ्ग (उपादान-मुख्य) तथा बहिरङ्ग (निमित्त-गौण) कारण चाहिए। दोनों कारणों के समुदाय से ही कार्य सम्पादन होता है। उपादान कारण को कार्यरूप से परिणमन करने के लिए निमित्त कारण की आवश्यकता होती है परंतु उपादान कारण के अभाव से निमित्त कारण कार्य करने के लिए अकिञ्चित्कर (कुछ नहीं करने वाला) उदासीन होता है। रोग उत्पत्ति के लिए वात, पित्त, कफ की विकृति, असम्यक् आहार, अयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, रोगाणु, दूषित वायु, रोग संक्रामक कारण आदि बाह्य कारण हैं। परंतु मुख्य कारण पूर्वोपार्जित असातावेदनीयकर्म (पापकर्म) है। आयुर्वेद मर्मज्ञ जैनाचार्य श्री उग्रादित्य जैन आयुर्वेद ''कल्याण कारक'' में रोग उत्पत्ति के कारण बताते हुए वर्णन करते हैं कि -

सहेतुकस्सर्वविकारजाता। स्तेषां विवेको गुणमुख्यभेदात् ।।
हेतु: पुन: पूर्वकृतं स्वकर्म। तत: परे तस्य विशेषणानि ।। 11

शरीर में सर्वविकार (रोग) सहेतुक ही होते हैं, परंतु उन हेतुओं को जानने गौण और मुख्य विवक्षा रूपी विवेक से काम लेने की जरुरत है। रोगादि विकारों का मुख्य हेतु अपने पूर्वकृत कर्म हैं बाकी के सब उनके विशेषण हैं अर्थात् निमित्त कारण गौण है।

कर्म का पर्यायवाची नाम -

स्वभाव काल ग्रह कर्म दैव। विधातृ पुण्येश्वर भाग्यपापम् ।।
विधि: कृतांतो नियतिर्यमश्च। पुराकृतस्यैव विशेष संज्ञा ।। 12

स्वभाव, काल, ग्रह, कर्म, दैव, विधाता (ब्रह्मा), पुण्य, ईश्वर, भाग्य, पाप, विधि, कृतांत, नियति, यम ये सब पूर्वजन्मकृत कर्म के ही अपरनाम हैं। इसलिए जो लोग ऐसा कहा करते हैं कि -

''काल बिगड गया, ग्रहदोष मुझे दु:ख दे रहा है, दैव रुष्ट है, ब्रह्मा ने ऐसा लिखा है, ईश्वर की ऐसी मर्जी है, यम महान् दुष्ट है, होनहार बडा प्रबल है'' इन सबका यही अर्थ है कि पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से ही मनुष्य को सुख-दु:ख मिलते हैं।

रोगोत्पत्ति के मुख्य कारण -

न भूतकोपान्नव दोष कोपान्नचैव सांवत्सारिकोपरिष्टात् ।।
ग्रहप्रकोपात्प्रभवंति रोगा: । कर्मोदयोदीरणभावतस्ते ।। 13

पृथ्वी आदि भूतों के कोप से रोग उत्पन्न नहीं होते हैं और न कोई दोषों के प्रकोप से ही रोग होते हैं। वर्षफल के खराब होने से और मंगल आदि ग्रहों के प्रकोप से

भी रोगों की उत्पत्ति नहीं होती है लेकिन कर्म के उदय और उदीरणा से ही रोग उत्पन्न होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा -

तस्मात्स्वकर्मोपशम क्रियाया। व्याधिप्रशांति प्रवदंति तदृशा:।
स्वकर्मपाको द्विविधो यथाव । दुपायकालक्रम भेदभिन्न ॥ 14

इसलिए कर्म के उपशमन क्रिया (देवपूजा ध्यान आदि) को बुद्धिमान लोग वास्तव में रोग शांति करने वाली क्रिया अर्थात् चिकित्सा कहते हैं। अपने कर्म का पकना दो प्रकार से होता है - एक तो यथाकाल पकना दूसरा उपाय से पकना।

स्वास्थ्य प्राप्ति का उपाय- सदाचार एवं सत्विचार -

स्नानं विधाय विधिवत्कृतदेवकार्य: संतर्पितातिथिजन: सुभना: सुवेष:।
आपृैवृतो रहसि भोजनकृतथा स्यात्सायं यथा भवति मुक्तिकरोऽभिलाष: ॥328

स्वास्थ्य रक्षा चाहने वाले विवेकी पुरुष को स्नान करने के पश्चात् शास्त्रोक्त विधि से ईश्वर भक्ति करके और अतिथिजनों (दान योग्य पात्रजनों) को संतुष्ट करके अकलुषित (शुद्ध) चित्तशाली होकर सुन्दर वस्त्र पहनकर एवं हितैषि माता-पिता व गुरुजनों से वेष्ठित होते हुए एकान्त में उस प्रकार से उतना (भूख के अनूसार) भोजन करना चाहिए, जिससे कि सायंकाल में उसकी भोजन की इच्छा प्रकट हो जाये।

आयुर्वेद मर्मज्ञ प्राचीन आचार्यों ने शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए निम्नोक्त प्रकार से बताए हैं।

नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्ता:।
दाता सम: सत्य पर: क्षमावानाप्तोपसेवी चं भवत्यरोग: ॥

अष्टाङ्ग अ. १लो. - 36

जो सतत् हितकर आहार योग्य विहार करता है, विवेकपूर्ण परिणाम को विचार करके प्रत्येक कार्य करता है, पञ्चेन्द्रियजनित विषय में आसक्त नहीं होता है, यथायोग्य पात्र को यथायोग्य दान देता है, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र में समता भाव धारण करता है - सत्यपरायण, क्षमावान्, देव, शास्त्र, गुरु, गुणीजन, वृद्धजनों की सेवा करता है वह निरोगी होता है।

कर्मयोग के पुरस्कर्ता महान् क्रांतिकारी महापुरुष श्रीकृष्ण गीता में बताते हैं कि-

युक्ताहार विहारस्ययुक्त चेष्टस्यकर्मसु।
युक्त स्वप्नाबोधस्य योगोभवति दु:खहा॥ (गीता)

जो योग्य आहार, विहार चेष्टा, कर्म में रत हैं उसकी जागृत एवं सुप्त अवस्था

दु:ख मिटाने के लिए है। जो मनुष्य आहार, विहार में, दूसरे कर्म में, सोने-जागने में योग्य व परिमित रहता है, उसका योग्य दु:ख नाश के लिए हो जाता है।

रोग दो प्रकार के हैं - 1) शारीरिक 2) मानसिक, यदि सूक्ष्म रूप से विचार करेंगे, तब रोग 3 प्रकार के हैं - 1) व्याधि (शारीरिक) 2) आधि (मानसिक) 3) उपाधि (आध्यात्मिक)

आधि रोग, व्याधि एवं उपाधि के लिए बीज स्वरूप कारण है। आधि माने मानसिक दोष। यथा - राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मत्सर, मानसिक तनाव, विक्षोभ आदि-आदि।

जिस समय में मानसिक विक्षोभ उत्पन्न होता है, उसका परिणाम प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से शरीर के ऊपर भी पडता है। वह दुष्परिणाम ही शारीरिक तथा आध्यात्मिक रोग के रूप में प्रकट होता है। आयुर्वेद आचार्य वाग्भट ने अष्टाङ्ग हृदय में कहा है -

रजस्तमश्चमनसोद्वौ च दोशावुदाहृतौ। 21 प्रथमोध्याय पृ. - 10

रज और तम ये दो मानसिक रोग हैं। इन दोषों से मन दूषित होकर अस्वस्थ हेा जाता है। मानसिक रोग दूर करने के लिए उपर्युक्त मानसिक रोग शोधन करके मानसिक साम्य रस सेवन करना चाहिए।

मानसिक औषध -

धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम्॥ 26

धी अर्थात् बुद्धि - जिसके द्वारा मनुष्य सबको यथार्थ से देखता है।

धृति - धैर्य - जो नियमन/नियंत्रण करती है।

धृतिस्तु - नियमात्मिका - आत्मा आदि का ज्ञान मोक्ष के रास्ते का ज्ञान करना। चरक में कहा है -

मानसं प्रति भैषज्यंत्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम् ।
तद्विद्यसेवा विज्ञानमात्मादीनां च सर्वश:॥

आत्म विज्ञान - योग से होता है इसीलिए कहा है -

योगोमोक्षप्रवर्तक:॥

योग का अर्थ **'चित्तवृत्ति निरोध'** है। मन में जो विभिन्न संकल्प, विकल्प रागद्वेष आदि जो भावात्मक परिस्पंदन होता है उस परिस्पंदन को निरोध करना योग है। उपर्युक्त भावात्मक परिस्पंदन से आत्मा की अन्त:शक्ति क्षीण होती जाती है। उस परिस्पंदन से मन में विक्षोभ उत्पन्न होता है। उस विक्षोभ से मानसिक शारीरिक तनाव पैदा होता है। वह तनाव अधिकांश रोग के लिए कारण बन जाता है। आधुनिक विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ होम्योपैथी, एलोपैथी आदि चिकित्सा पद्धति की चरम

उन्नति हुई। परंतु उस पद्धति से रोग निर्मूल रूप से नाश नहीं हुआ वरन् विभिन्न विकृत रूप को धारण करके भयंकर रूप से रोग प्रकट हुआ। वैज्ञानिक लोग विशेष करके मनोवैज्ञानिक डाक्टर इस प्रक्रिया का कारण शोध निकाले। वस्तुत: आरोग्य औषधि की शीशी में नहीं है। पूर्ण निरोग प्राप्त करने के लिए रोग का मूल कारण का शोध-बोध हेाना अनिवार्य है। मनोवैज्ञानिक लोग अत्यन्त परिश्रम से शोध किए कि अधिकांश रोगों का मूल कारण मानसिक-विकृति-तनाव-विक्षोभ आदि हैं। वर्तमान की उन्नत स्वास्थ्य शिक्षा पद्धति प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है। इस पद्धति में प्राकृतिक जल, वायु, मिट्टी, सूर्य-रश्मी, वनस्पति, प्रार्थना, सत्साहित्य का अध्ययन, नैतिक आचार-विचार, मानसिक शांति आदि है।

तनाव -

सहज मनोभाव का असहजरूप होना तनाव है। तनाव का अर्थ खिंचाव है। तनाव अनेक प्रकार के हैं - 1) मांसपेशिय तनाव 2) स्नायविक तनाव 3) शारीरिक तनाव। मानसिक तनाव (Mental tension), स्नायविक तनाव (P.T.), भावात्म्क तनाव (Emotional tension)

उपर्युक्त तनाव ही अनेक रोग का कारण बन जाते हैं। इसलिए प्राचीन मनीषियों ने चिंता को जीवन में अभिशाप बताते हुए कहा है -

चिंता चिता समा प्रोक्ता, को भेद: चिंता चिन्तयो:।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता सजीवमप्यही ॥

चिंता अर्थात् मानसिक अशांति तथा चिता (दाह संस्कार अग्नि) दोनों समान हैं। क्योंकि चिता शव को अर्थात् निर्जीव शरीर को जलाती है परंतु चिंता जीव सहित शरीर को जलाती है। मरने के उपरान्त जड शरीर को अग्नि से जलाते हैं, परंतु चिंता रूपी अग्नि, मन के साथ-साथ शरीर को भी जला डालती है अर्थात् मानसिक तनाव से शारीरिक-मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चिंता उत्पन्न होने का प्रथम एवं प्रधान कारण अनैतिक, अधार्मिक आचार-विचार है। इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को प्राचीन ऋषि, मुनि, ज्ञानियों ने स्पष्ट रूप से अनुभव करके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए धर्माचार तथा नैतिकाचार के ऊपर अत्यधिक महत्त्व दिया है।

स्वास्थार्थ धर्ममाचरेत् -

सुखार्था: सर्वभूतानां मता: सर्वा: प्रवृत्तय:।
सुख च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥ 20

सब प्राणियों की सब प्रवृत्तियाँ सुख के लिए होती है और धर्म बिना सुख नहीं मिलता, इसलिए मनुष्य को धर्मपरायण होना चाहिए।

धर्म: सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नम: ॥

धर्म सब प्रकार सुख के लिए कारण है तथा सर्व प्रकार हितकर है। धर्म से ही शाश्वतिक सुख-शांति मिलती है। इसलिए हे बुद्धिमान लोग ! धर्म का संग्रह करो, धर्म से मंगलमय सुख मिलने के कारण धर्म को मेरा सादर नमस्कार हो।

यमैश्च सर्वैर्नियमैरुपेतो। मृत्युंजयाभ्यासरतो जितात्मा ॥
जिनेंद्रविवार्चनायात्मरक्षां। दीक्षामिमाँ सर्वाधिकांगृहीत्वा॥ 24

प्रतिनित्य यम या नियम व्रतों से युक्त रहे, मृत्युंजयादि मंत्रों को जपते रहें। इंद्रियों को वश में रखे, जिनेन्द्र बिम्ब की पूजा से मैं अपनी आत्मरक्षा कर लूँगा, इस प्रकार की नियम दीक्षा को लेवें।

दिवा निशं धर्मकथास्य शृण्वन्। समाहितो दानदयापरश्च॥
शान्ति पयोमिष्टरसान्न पानै। स्संतर्पयन्साधुमुनींद्रवृंदम् ॥ 26

रात-दिन धर्म कथाओं को सुनते हुए सदाकाल दया और दान में रत रहें। सदा सुन्दर-मिष्ट आहारों से शांत साधुगणों को तृप्त करते रहें।

सदातुरस्सर्वहितानुरागी। पाप क्रियाया विनिवृत्तवृत्ति:॥
वृषान्विमचुन्नभदोहिनश्च । विमोचंयन्बंधनपंजरस्थान् ॥ 27

सदा रोगी, सबका हितैषी बनें और सबसे प्रेम रखें। सर्वपाप क्रियाओं को बिल्कुल छोड देवें। बंधन एवं पिंजरे में बंद चूहे अन्य प्राणियों को दया से छूडावें।

शाम्योपशांति च नरश्चभक्त्या। निनादभक्त्या जिनचन्द्रभक्त्या॥
एव विधौ दूरत एव पापा। द्विमुच्यते किं खलु रोगजालै: ॥ 28

उपर्युक्त प्रकार के सदाचारणों से जो मनुष्य अपनी आत्मा को निर्मल बना लेता हे, जो जिनागम व जिनेंद्र के प्रति भक्ति करता है, वह मनुष्य शांति एवं सुख को प्राप्त करता है। उस मनुष्य को पाप भी दूर से छोडकर जाते हैं। दुष्ट रोगजाल क्यों उसके पास में जावेंगे ?

सर्वात्मना धर्मपरा नरस्या। तमाशु सर्व समुपैति सौख्यम्॥
पापोदयाते प्रभवंति रोगा धर्माच्च पापा प्रतिपक्षयोगा।
द्विनाशमायांति किमत्रचित्रम्॥ कल्याणकारक

जो व्यक्ति सर्व प्रकार से धर्म परायण रहता है, उसे संपूर्ण सुख आकर मिलते

हैं। पाप के उदय से रोग उत्पन्न होते हैं। पाप और धर्म ये दोनों परस्पर विरोधि हैं। धर्म के अस्तित्व में पाप नाश होता है क्योंकि धर्म पाप के प्रतिपक्षी है अर्थात् पाप अपना प्रभाव धर्म के सामने नहीं बतला सकता। प्रतिपक्ष की प्रबलता होने पर अन्य पक्ष के नाश हेाने में आश्चर्य क्या है ?

धर्मस्तयाभ्यंतरकारणंस्थाद्रोग प्रशांत्ये सहकारिपूरम् ।।
बाह्यं विधानं प्रतिपद्यतेऽत्र। चिकित्सितं सर्वमिहोभयात्म।। 30

इस कारण से रोग शांति के लिए धर्म अभ्यंतर कारण है। बाह्य चिकित्सा केवल सहकारी कारण है। उसका निरुपण यहाँ पर किया जायेगा। अतएव सम्पूर्ण चिकित्सा बाह्य और अभ्यंतर के भेद से दो प्रकार की है।

पूर्व में रोग कर मूल कारण बताते हुए वर्णन किया गया है कि, पापकर्म समस्त रोग के लिए प्रथम एवं प्रधान बीजभूत कारण है। पापकर्म, हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य, दुष्टता, धूर्तता आदि अनेक अधार्मिकता आचार-विचार से जीवों के साथ सूक्ष्म परमाणु सूक्ष्म जैविक-रासायनिक प्रक्रिया से संश्लेशण रूप से बंध जाते हैं। जिस प्रकार बीज उपयुक्त जलवायु के माध्यम से यथायोग्य समय में अंकुरित होकर फल प्रदान करते हैं, उसी प्रकार बंधे हुए पापकर्म भी योग्य समयानुसार अंकुरित, पल्लवित होकर फल प्रदान करते हैं। उस पाप कर्म का फल ही रोग, दु:ख, संकट, आपत्ति, दरिद्रता आदि हैं जिस प्रकार अनैतिक आदि आचार-विचार से पाप कर्म बंध होकर रोगादि के लिए कारण बनते हैं उसी प्रकार नैतिक, धार्मिक आचार-विचार से पुण्यकर्म का आगमन होता है। जिससे पापकर्म की शक्ति क्षीण हो जाती है। पापकर्म की शक्ति क्षीण होने से तथा पुण्यकर्म की शक्ति प्रबल होने से रोगादि दूर होते हैं, यह सूक्ष्म कर्म संबंधित दार्शनिक सिद्धान्त है। इसलिए जैन, बौद्ध, हिंदू तथा प्राचीन आयुर्वेद के मर्मज्ञ मनीषियों ने रोग की चिकित्सा के लिए प्रधान कारण धार्मिक आचार-विचार, गुरुजनों के प्रति आदर्श विनय-भाव, भगवान् के प्रति श्रद्धा, विश्वास आदि बताए हैं। जैनाचार्य श्री पूज्यपाद (देवनंदी) जो की शरीर शुद्धि के लिए आयुर्वेद शास्त्र, वचन-शुद्धि के लिए जैनेन्द्र व्याकरण तथा मानसिक एवं आध्यात्मिक शुद्धि के लिए सर्वार्थसिद्धि, इष्टोपदेश, समाधि-शतक आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रतिपादन किए हैं वे स्वास्थ्य के लिए बताते हैं कि -

कृद्धाशीर्विषदुष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमंत्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।।
तद्वत्ते चरणारुणांबूजयुगस्तोत्रान्मुखानां नृणाम्।।
विघ्ना: कायविनायकाश्च सहसा शाम्यत्यहोविस्मय: ।। शांतिभक्ति

क्रोधित सर्प दर्शन करने से पूर्ण शरीर में भयंकर विष व्याप्त हो जाता है। वह विष गरूड मुद्रा का ध्यान रखने से विषापहारक औषध सेवन से, मंत्रित जल से, होम से जिस प्रकार विष नष्ट हो जाता है उसी प्रकार हे जिनेंद्र भगवान् ! कमल के समान आपके सुंदर चरण कमल की स्तुति-स्तोत्र, ध्यान करने में जो लीन होता है उसका अनेक संकट तथा शरीर का नाश करने वाले महाभयंकर रोग भी शीघ्रातिशीघ्र विलय को प्राप्त हो जाते हैं यह बहुत आश्चर्य है।

उपरोक्त श्लोक प्रतिपादन करने वाले आचार्य स्वयं आयुर्वेदज्ञ मुनि थे। एक बार उनके आँख में मोतियांबिंदु रोग हो गया था। वे अनेक औषध जानते हुए भी यह श्लोक जिस स्तोत्र में है, जिसका नाम ''शांतिभक्ति'' है उसका भक्तिपूर्वक स्मरण किये। केवल भगवत् भक्ति से ही मोतियांबिंद गल करके पानी रूप में बहकर निकल गया इससे सिद्ध होता है कि श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, भावना में महान् शक्ति निहित है। उस शक्ति के माध्यम से केवल शारीरिक रोग क्या मानसिक तथा आध्यात्मिक रोग नष्ट होकर अनन्त आध्यात्मिक-स्वास्थ्य रूप मोक्ष सुख मिल सकता है।

पहले वर्णन किया गया है कि पापकर्म से रोग होता है। पापकर्म का कारण हिंसादि पापकृत है। अत: रोग को निर्मूल नष्ट करने के लिए वाग्भट आचार्य दस प्रकार के पापों को सर्वथा त्याग करने के लिए बताते हैं।

हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते।। 21
सम्भिन्नालापं व्यापादमभिध्यां दृग्विपर्ययम्।
पापं कर्मेति दशधा कायवाङमनसैस्त्यजेत्।। 22

अष्टांग हृदय सूत्रस्थानम्पृ. - 22

दस तरह का पापकर्म -

1) **हिंसा** - प्राणियों को मारना।
2) **स्तेय** - चोरी करना।
3) **अन्यथाकाम** - अगम्या स्त्री, गुरुजन - आदि की स्त्री के साथ मैथुन करना।
4) **पैशुन्य** - चुगली करना।
5) **परुष** - कठोर वचन।
6) **अनृत** - झूठ बोलना।
7) **सभिन्नप्रलाप** - असम्बद्ध बोलना।
8) **व्यापाद** - दूसरे को हानि पहुँचाने का विचार।
9) **अभिध्या** - दूसरे के गुण न सहन करना। ईर्ष्या अथवा दूसरों के धन को लेने की इच्छा।

10) **दृग्विपर्यय** - नास्तिकता या आप्त वाक्यों में अश्रद्धा करना।

ये दस प्रकार के पापकर्म हैं। इन पापकर्मों को शरीर, वाणी और मन तीनों से छोड देना चाहिए। नीतिकारों ने बताया है -

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।

मन, मनुष्य के बन्ध एवं मोक्ष के लिए प्रधान कारण है। दूषित मन बंध के लिए कारण है तथा पवित्र मन मोक्ष के लिए कारण है। प्रत्येक पाप तथा पुण्य के लिए मन मूल कारण होते हुए भी पाप अभिव्यक्ति वचसा तथा कायिक भी होती है। हिंसा, चोरी और कुशील रूपी पाप की प्रवृत्ति शरीर से होती है। चुगलीखोर, कठोर वचन, मिथ्यावचन, असम्बद्ध वचन रूपी पाप की वृत्ति वचन से होती है। उपरोक्त दस पापकर्म ही शारीरिक रोग के साथ- साथ मानसिक तथा आध्यात्मिक रोग के भी कारण बनते हैं। इसलिए सुखेच्छुक पुरुष को चाहिए कि वे सतत् अधर्म को त्याग कर धर्म का आचरण करें। धर्म क्या है ? उसका परिणाम क्या है ? इत्यादि विषय को लेकर इसी पुस्तक में आगे विभिन्न सन्दर्भ में वर्णन किया जायेगा। वहाँ से पाठक देखने का कष्ट करें।

स्वास्थ्य की संक्षिप्त शिक्षा -

एकदा धन्वन्तरी पक्षी के वेष में योग्य वैद्य की परीक्षा के लिए स्वर्ग से अवतरित होकर भूपृष्ठ में आये। वह विभिन्न स्थान में घूम-घूमकर कोऽरुक् (क: अरुक् अर्थात् कौन निरोगी है) कुगते-कुगते (बोलते-बोलते) परीक्षा करने लगे। एक दिन उस पक्षी को वृक्ष पर बैठकर बोलते हुए एक व्यक्ति ने सुना, वह बोला -

''च्यवनप्राश भुक् अरुक् !'' अर्थात् जो च्यवनप्राश खाता है, वह निरोगी है। इस उत्तर को सुनकर पक्षी वहाँ से भाग गया । अन्य स्थान में पुन: ''कोऽरुक् कोऽरुक्'' कुगने (बोलने) लगा। एक व्यक्ति ने उस वचन को सुनकर उत्तर दिया ''हिंग्वाष्टक भुक् सोऽरुक्''। वहाँ से भी पक्षी भागकर परीक्षा के लिए विभिन्न स्थान में घूम-घूमकर उपरोक्त वाक्य बोलने लगा। एक व्यक्ति ने सुनकर बोला -

हितभुक् मितभुक् ऋतुभुक् (शाकभुक्), शतपद गामी वामशयीच।
अनिरोध विटपुरुष (मलमूत्र) सदाचारी पुरुष:, सोऽरूक् सोऽरूक्॥

हितभोजी, अल्पभोजी, ऋतु अनुकूल भोजी (शाकाहारी) आहार के बाद सौ पग चलने वाला, वाम पार्श्व में सोनेवाला, मलमूत्र निरोध नहीं करने वाला सदाचारी निरोगी होता है। पक्षी स्वरूप देव, मूल स्वरूप में प्रकट होकर उस व्यक्ति को बोले आप ही योग्य वैद्य हो। वह व्यक्ति सुनामधन्य सुश्रुत (च्यवन) थे।

सम्पूर्ण आयुर्विद्या (चिकित्सा विज्ञान) इस सिद्धान्त में निहित है।

हियाहार मियाहार अप्पाहार य जे नरा ।
न ते विज्जातिगच्छति, अप्पाण ते तिगिच्छगा॥

जो मनुष्य हित आहार, मित आहार, और अल्पाहार करता है, वह वैदिक चिकित्सा करने के लिए नहीं जाता है। स्वयं की चिकित्सा स्वयं कर लेता है।

तहा भोत्तत्व जहा से जायमाताय भवति।
नय भवति विब्भमो न भंसणा य धम्मस्स॥

उतना ही भोजन करो जिससे जीवन की संयम यात्रा सुचारु रूप से गतिशील होती है और जिससे विभ्रम नहीं होता है और धर्म की भर्त्सना नहीं होती हैं।

स्वास्थ्य के भेद -

अथेह भव्यस्य नरस्स सांप्रतं द्विविध तत्स्वास्थ्यमुद्राहतंजिनै:।
प्रधानामाद्यं परमार्थमित्यतोद्वितीयमन्यव्यवहार संभवम् ॥

भव्यात्मा मनुष्य को जिनेंद्र ने पारमार्थिक, व्यवहार के रूप से दो प्रकार का स्वास्थ्य बतलाया है। उसमें पारमार्थिक स्वास्थ्य मुख्य है, व्यवहार स्वास्थ्य गौण है।

परमार्थ स्वास्थ्य लक्षण -

अशेशकर्मक्षयजं महाद्भुतं, यदेतदात्यंतिकमद्वितीयम्।
अतींद्रियं प्रर्भितमर्थवेदिभि:, तदेतदुक्तं परमार्थनामकम्॥ 3

आत्मा के सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से उत्पन्न अत्यद्भूत, आत्यंतिक व अद्वितीय, विद्वानों के द्वारा अपेक्षित, जो अतीन्द्रिय मोक्षसुख है उसे पारमार्थिक स्वास्थ्य कहते हैं।

व्यवहार स्वास्थ्य लक्षण -

समाग्नि धातुत्वमदोष विभ्रमो, मलक्रियात्मेंद्रियसुप्रसन्नता।
मन: प्रसादश्च परस्य सर्वदा, तदेवमुक्तं व्यवहारज खलु॥ 4

मनुष्य के शरीर में सम अग्नि का रहना, समधातु का रहना, वात आदि विकार न होना, मलमूत्र का ठीक तौर से विसर्जन होना, आत्मा, इंद्रिय व मन की प्रसन्नता रहना, ये सब व्यवहार स्वास्थ्य का लक्षण है।

साम्य विचार -

सुसौम्यभाव: खलु साम्यमुच्यते। रुचिश्च पाको बलमेव लक्षणम्।
हितो मिताहाराविधिश्च साधनं। बल चतुर्वर्गसमाग्निरिष्टे॥ 5

परिणाम में शांति रहना उसे साम्य कहते हैं। आहार में रुचि रहना, पाचन

होना और शक्ति का बना रहना साम्य का लक्षण हैं अर्थात् साम्य का द्योतक है। हित, मित आहार सेवन करना रुचि आदि के बनाये रखने के साधन हैं। बल से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चतुवर्गों की पूर्ति होती है।

बल परीक्षा -

कृशोऽपि कश्चिद्बलवान्भेवेत्पुमान्, सुदुर्बल स्थूलतरोऽपि विद्यते।
बलं विचार्य बहुधा नृणां भवे-दतीव भारैरपि धावनादिभि। 5

कोई-कोई मनुष्य कृश दिखने पर भी बलवान रहते हैं। कोई मोटे दिखने पर भी दुर्बल रहते हैं। इसलिए मनुष्य के शरीर को न देखकर उनको दौडाकर या कोई वजन उठवाकर उनके बल का विचार-परीक्षा करना चाहिए।

बलंप्रधानं खलु सर्वकर्मणामतो विचार्य भिषजा विजानता।
नरेषु सम्यक् बलवत्तरेष्विह क्रिया सुकार्या सुख सिद्धिमिच्छता॥ 16

सब कार्यों के लिए बल ही मुख्य है। इसलिए मतिमान वैद्य उस बल को पहिले विचार करें। बलवान मनुष्य में किये हुये प्रयोग में ही वह अपनी सफलता की भी आशा रखें अर्थात् चिकित्सा में सफलता प्राप्त करना हो तो बलवान् मनुष्यों की चिकित्सा करें।

बलोत्पत्ति के अन्तरङ्ग कारण -

सकर्मणामौपशमात् क्षयादपि, क्षयोपशम्यादपि नित्यमुत्तमम्।
सुसत्वमुद्यत्पुरुषस्य जायते, परिषहान्यो सहते सुसत्ववान्॥ 17

वीर्यांतराय कर्म के उपशम, क्षय या क्षयोपक्षम से मनुष्य को उत्तम बल की वृद्धि होती है। वह बलवान मनुष्य अनेक परिषहों को सहन करने में समर्थ होता है।

बलवान मनुष्य के लक्षण -

स सत्ववान्योऽभ्युदयक्षयेष्वपि, प्रफुल्लसौम्यानुनपंकजस्थितिः।
न विध्यते तस्य मनः सुदुस्सहैः, क्रिया विशेषरपि धैर्यमाश्रितम्॥ 18

उस बलवान मनुष्य की सम्पत्ति आदि नष्ट होने पर भी वह अपने धैर्य को नहीं छोडता है और उसके मुख की कांति, शांति आदि सभी बाते सही रहने पर मुख कमल के समान ही प्रफुल्लित रहता है। दुस्सह क्रियाओं के द्वारा उसका मन जरा भी विचलित नहीं होता है।

स्वयं में स्थिर होना स्वास्थ्य है। समभाव में रहना स्वास्थ्य है। शुद्ध स्वभाव में स्थिरता, समता हो सकती है। अशुद्ध में स्थिरता सम्पूर्ण रूप से नहीं हो सकती है। सम्पूर्ण बंधनों से, वैभाविक भाव से, मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक रोगो से रहित

शुद्ध, सिद्ध, चिदानंद स्वरूप परमब्रह्म आत्मा ही पूर्ण परमार्थिक स्वास्थ्य को भोगते हैं अर्थात् निर्वाण-मोक्ष अवस्था ही पारमार्थिक स्वास्थ्य अवस्था है। लौकिक दृष्टि से समदोष आदि से जो अवस्था प्रकट होती है, उसको गौण स्वास्थ्य कहते हैं। आयुर्वेदाचार्य वाग्भट ने कहा है -

समदोषः समाग्नि समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेंद्रियमनाः स्वस्थ इत्याभिधियते॥

जिस अवस्था में वात, पित्त, कफ रोग ये तीनों सम अवस्था में रहते हैं; जठराग्नि समावस्था में रहती है, धातु समावस्था में रहती है, मल निष्कासन क्रिया समान रूप से होती है, आत्मा एवं इंद्रियाँ प्रसन्न रहती हैं, उस अवस्था को स्वास्थ्य या आरोग्य कहते हैं।

प्रत्येक कार्य सम्पादन करने के लिए शक्ति की नितांत आवश्यकता है। बिना शक्ति के विध्वंसात्मक या रचनात्मक कार्य नहीं हो सकता है। उसी प्रकार इह लौकिक गौण सुदृढ स्वास्थ्य तथा पारमार्थिक मोक्ष स्वास्थ्य के लिए शक्ति चाहिए। मनोबल के माध्यम से शारीरिक रोग प्रतिरोध की शक्ति बढती है, जिससे रोग शरीर में प्रवेश नहीं कर पाता है। कदाचित् रोग होने के बाद भी सुदृढ इच्छा शक्ति, मनोबल के कारण रोग शीघ्रातिशीघ्र क्षीण हो जाता है, इसलिए शारीरिक शक्ति के साथ निरोगी होने के लिए मानसिक शक्ति की नितांत आवश्यकता है।

महाभारत में वर्णित स्वास्थ्य विज्ञान -

द्विविधो जायते व्याधिः शरीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्दं नोपलभ्यते॥ 8

मनुष्य को दो प्रकार की व्याधियाँ होती हैं - एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनों की उत्पत्ति एक दूसरे के आश्रित है। एक के बिना दूसरे का होना सम्भव नहीं है

शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नात्र संशयः।
मानसाज्जायते वापि शारीर इति निश्चय॥ 9

कभी शारीरिक व्याधि से मानसिक व्याधि होती है। इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार कभी मानसिक व्याधि से शारीरिक व्याधि का होना भी निश्चित है।

शरीरं मानसं दुःखं योऽतितमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनथौ च विन्दति॥ 10

जो मनुष्य बीते हुए मानसिक अथवा शारीरिक दुःख के लिए बार-बार शोक

करता है, वह एक दु:ख से दूसरे दु:ख को प्राप्त होता है। उसे दो-दो अनर्थ भोगने पडते हैं।

शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरज गुणाः।
तेषांगुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्॥ 11

सर्दी, गर्मी और वायु (कफ, पित्त और वात) ये तीन शारीरिक गुण हैं। इन गणों का साम्यावस्था में रहना ही स्वस्थता का लक्षण बताया गया है।

तेषामन्यतमोद्रेके विधानमुपदिश्यते।
उष्णेन बाध्यते शीतं शीतेनोष्णं प्रबाध्यते॥ 12

उन तीनों में से किसी एक की वृद्धि हो जाये तो उसकी चिकित्सा बतायी जाती है। उष्ण द्रव्य से सर्दी और शीत पदार्थ से गर्मी का निवारण होता है।

सत्त्वं रजस्तम इति मानसाः स्युस्त्रयो गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्॥ 13

सत्व, रज और तम ये तीनों मानसिक गुण है। इन तीनों गुणों का साम्यावस्था में रहना मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण बताया गया है।

तेषामन्यतमोत्सेके विधानमुपदिश्यते।
हर्षेण बाध्यते शोको हर्ष शोकेन बाध्यते॥ 14

इनमें से किसी एक की वृद्धि होने पर उपचार बताया जाता है। हर्ष (सत्व) के द्वारा शोक (रजोगुण) का निवारण होता है और शोक के द्वारा हर्ष का।

कश्चित् सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति।
कश्चित् दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छति॥ 15

कोई सुख में रहकर दु:ख की बातें याद करना चाहता है और कोई दु:ख में रहकर सुख का स्मरण करना चाहता है।

महाभारत शांतिपर्व (4458)

-: स्वास्थ्यामृतम् :-

अयोग्य भोजन, अव्यवस्थित जीवन शैली, आलस्य प्रवृत्ति, मन की अस्थिरता (तनाव), भाव की अपवित्रता (अधर्म) से शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक शाक्ति क्षीण होती है जिससे रोग निर्भय होकर कष्ट देता है।

परिच्छेद - 4

वेगावरोध से रोग तथा उसका प्रतिकार

शरीर एक सूक्ष्म सक्रिय वैज्ञानिक यंत्र है। प्रत्येक समय में शरीर में विभिन्न क्रियायें चलती रहती हैं। उन क्रियाओं को करने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है। उस शक्ति को उत्पन्न करने के लिए आहार-पानी की आवश्यकता होती है। आहार-पानी ग्रहण करने के पश्चात् पाचन क्रिया होती है, उस पाचन क्रिया के माध्यम से सारभूत अंश रस-रुधिर-मांस-मज्जा आदिरूप परिणमन हो जाता है। असार अंश शरीर के अन्दर सञ्चित रहता है। यदि यथायोग्य समय में असार अंश निष्कासित नहीं होता है तब वह असार अंश शरीर की प्रक्रिया में बाधक होता है अर्थात् रुकावट से प्रतिक्रिया होती है। वह विकार रूप प्रतिक्रिया ही रोग धारण कर लेती है। इसलिए शरीरस्थ मल को शरीर, स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा स्वयं की रक्षा के लिए स्वयं बाहर ढकेलकर निकाल देता है। यदि कोई कारणवशत: मल अवरोध करता है वह स्वयं ही रोग को निमंत्रण देता है। इसलिए विज्ञ वैद्यों ने मलरोध करने के लिए विशेष रूप से निषेध किया है अर्थात् कभी भी मल नहीं रोकना चाहिए।

न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगान्रीरोधयेद्बलात्।
काम शोक भय क्रोधान्मनो वेगान्विधारयेत् ।। यो.र.नि.वि. पृ.-1

मलमूत्रादिक का जब वेग आता है अर्थात् शौच-लघुशंका आदि की इच्छा हो उसी समय अन्य समस्त कार्यों को छोडकर मलमूत्र को त्याग करना चाहिए। यदि मलमूत्र स्वाभाविक नहीं आते हैं तब जबरदस्ती लाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। कामवासना, शोक, भय, क्रोधादि मानसिक वेगों के प्रवाह को रोकना अवश्य हितकारी है।

वेगावरोध निषेध -

वेगावन्न धारयेद्वातविण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम्।
निद्राकासश्रमश्वासजृम्भाश्रुच्छर्दिरेतसाम्॥ अष्टांग ह. चतुर्थ अ. पृ. 34

मनुष्य वात (ऊर्ध्ववात एवं अधोवात), मल, मूत्र, छींक, प्यास, भूख, निद्रा, कास, श्रमजनित श्वास, जम्भाई, अश्रु, वमन और शुक्र इन तेरह वस्तुओं के उपस्थित (बहिर्गमनोन्मुख) वेगों को न रोके ।

अधश्चोर्ध्व च भवानां प्रव्रत्तानां स्वभावतः।
न वेगान् धारयेत् प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः

वातविण्मूत्रजृम्भाऽश्रुक्षवोद्गार-वमीन्द्रियै:।
व्याहन्यमानैरुदितै रुदावर्तो निरुच्यते।।

सुश्रुत में भी कहा है - अधो आवेग एवं उर्ध्व आवेग को नहीं रोकना चाहिए उसका प्रवर्तन स्वभाविक रूप से होना चाहिए। अधोवायु, मल-मूत्र वेग, जम्भाई, अश्रुवेग आदि को रोकने से वातादि प्रकोप से विभिन्न रोग होते हैं। इसका विस्तार वर्णन निम्न प्रकार है -

अधोवायु के अवरोध से रोग -

अधोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तरुक्क्लमा:।
वातमूत्रशकृत्सङ्गदृष्टयग्निवधहृद्रदा:।। 2

अधोवायु को रोकने से गुल्म, उदावर्त, कोष्ठशूल, क्लम (ग्लानि), वात (अपान वायु), मूत्र और मल का अवरोध, दृष्टिवध (दृष्टि दौर्बल्य), अग्निनाश और हृदय रोग होते हैं।

स्नेहस्वेदविधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च।
पानानि वस्तयश्चैव शस्तं वातानुलोममनम्।।

वातजन्य विकार होने पर स्नेहन तथा स्वेदन विधि करना चाहिए एवं फलवत्ति, वातनाशक भोजन किञ्चित् गर्म जल का पान, वस्ति-कर्म तथा जो भी वात का अनुलोम करने में योग्य हो उन सभी का प्रयोग करना उचित है।

मलवेग को रोकने से रोग -

शकृत: पिण्डिकोद्वेष्टपतिश्याय शिरोरूज:।
ऊर्ध्ववायु: परीकर्तो हृदयस्योपरोधनम्।। 3
मुखेन विट्प्रवृत्तिश्च पूर्वोक्तश्चामया: स्मृता:।

मल के वेग को रोकने से पिण्डलियों में ऐंठन, प्रतिश्याय, सिरदर्द, वायु का ऊपर को जाना,परिकर्तिका,हृदय का अवरोध, मुख से मल का आना और पूर्वोक्त वातरोध जन्य गुल्म आदि रोग होते हैं।

मूत्र वेग रोकने से रोग -

अङ्गभङ्गाश्मरीबस्तिमेढ्रवङ्क्षवेदना:।। 4
मूत्रस्य रोधात्पूर्वे च प्रायो रोगा:

मूत्र के उपस्थित वेग को रोकने से - अंगों का टूटना, पथरी, बस्ति, मेहन (शिश्न) और वंक्षण में वेदना होती है। वात और मलरोध जन्य रोग भी प्राय: होते हैं अर्थात् कभी नहीं भी होते हैं।

इसकी औषधि

वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदनं वस्तिकर्म च।। 5

इनकी चिकित्सा वात, मूत्र और मल के वेगावरोध से उत्पन्न दोषों की चिकित्सा फलवर्ति, अभ्यङ्ग, अवगाहन, स्वेदन और वस्ति कर्म है।

मलवेग रोकने से उत्पन्न रोग का उपाय -

अन्न पानं च विड्रोधोत्थेषु यक्ष्मसु।

(विशेषत:) मलरोध जन्य रोगों में मलभेदी अन्न पान देना चाहिए।

मूत्र वेग रोकने से उत्पन्न रोग का उपाय -

मूत्र जेषु तु पाने च प्राग्भक्तं शस्यते घृतम्।
जीर्णान्तिकं चोत्तमया मात्रया योजनाद्वयम्।। 6

मूत्ररोधजन्य रोगों में भोजन से पूर्व घृतपान करना प्रशस्त है और रात्रि में भोजन के जीर्ण होने पर उत्तम मात्रा में घृतपान करायें; इन दोनों योजनाओं की अवपीडिक संज्ञा है।

डकार रोकने से रोग -

उद्धारस्यरुचि: कम्पो विबन्धो हृदयोरसो: ।
आध्मानकासहिमाश्च हिध्मावत्तत्र भेषजम्।। 8

उद्गार (उर्ध्ववात) को रोकने से - अरुचि, कम्प, हृदय और छाती में रुकावट, अध्यमान, हिक्का और वात होता है; इसमें हिक्का की तरह चिकित्सा करें।

छींक रोकने से रोग -

शिरोऽर्तीन्द्रिय दौर्बल्यमन्यास्तम्भार्दितं क्षुते:।
तीक्ष्णधूमाञ्जनाघ्राणना बनार्कविलोकने:।। 9
प्रवर्तयेत्क्षुतिं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत्।

छींक के उपस्थित वेग को रोकने से सिर में दर्द, आँख आदि इंद्रियों में दुर्बलता, मन्यास्तम्भ और अर्दित रोग होता है। रुकी हुई छींक को प्रवृत्त करने के लिए तीक्ष्ण धूम, तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण घ्राण (नस्य), सूर्य की ओर देखना ये सब करें; स्नेहन और स्वेदन भी करें।

प्यास रोकने से रोग -

शोषाङ्गसादबाधिर्यसम्मोह भ्रमहृद्रदा:।। 10
तृष्णाया निग्रहत्तत्र शीत: सर्वे विधिर्हित:।

प्यास रोकने से मुखशोष, अङ्गों में शिथिलता, बहरापन, ज्ञान का अभाव,

चक्कर आना और हृदय के रोग होते हैं; इसमें सम्पूर्ण शीतल विधि बरतनी चाहिए।

भूख रोकने से रोग -

अङ्गभङ्गा रुचिग्लानिकार्श्यशूलभ्रमाः क्षुधः ॥ 11

तत्र योज्यं लघु स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम्।

भूख को रोकने से - अङ्गों का टूटना, अरुचि, ग्लानि, शूल और चक्कर आना होता है। इसमें लघु, स्निग्ध, ऊष्ण और मात्रा में थोडा भोजन देना चाहिए।

निद्रा रोकने से रोग -

निद्राया मोहमूर्धाक्षिगौरवालस्य जृम्भिकाः ॥ 12

अङ्गमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि च।

निद्रा के उपस्थित वेग को रोकने से - मोह, सिर में भारीपन, आँखों पर बोझ, आलस्य, जम्भाई का आना और अङ्गों का टूटना होता है। इसमें नींद लेना और संवाहन (चंपी) उत्तम है।

खांसी रोकने से रोग -

कासस्य रोधात्तद्वृद्धिः श्वासारुचिहृदामयाः ॥ 13

शोषो हिदमा च, कार्योऽत्र कासहा सुतरां विधिः।

कासवेग को रोकने से - कास की अधिकता होती है; श्वास, अरुचि और हृदय के रोग हेाते हैं एवं श्वास और हिक्का होती है; इसमें कास नाशक विधि सम्पूर्ण रूप से बरतनी चाहिए।

श्वास रोकने से रोग -

गुल्महृद्रोगसम्मोहाः श्रमश्वासाद्विधारितात्।

हितं विश्रमणं तत्र वाताघ्नश्च क्रियाक्रमः ॥ 14

श्रमजनित श्वास को रोकने से - गुल्म, हृदय के रोग और मूर्च्छा होती है। इस अवस्था में आराम लेना और वातनाशक उपचार करना चाहिए।

जम्भाई रोकने से रोग -

जृम्भायाः क्षववद्रोगाः सर्वश्चानिलजिद्विधिः ॥ 15

जृम्भाई को रोकने से - छींक को रोकने से होने वाले रोगों के समान रोग होते हैं। इसमें वातनाशक विधि पूर्णतः करनी चाहिए।

आंसू रोकने से रोग -

पीनसाक्षिशिरोहृद्रुङ् मन्यास्तम्भारूचि भ्रमाः।

सगुल्मा वाष्पतस्तत्र स्वप्नों कद्यं प्रियाः कथाः ॥ 16

वाष्प (अश्रु) वेग रोकने से पीनस, अक्षिरोग, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, अरुचि, भ्रम और गुल्म रोग होते हैं; इसमें नींद लेना, मद्य (आसव, मीठा फलरस) तथा प्रसन्नता पैदा करने वाली मनोहर कहानियों को सुनना लाभप्रद होता है।

वमन रोकने से रोग -

विसर्पकोठकुष्ठाक्षिक कण्डू पाण्ड्वामयज्वराः।

सकासश्वासहल्लासव्यङ्ग श्वयथवो वमेः ॥ 17

वमन के उपस्थित वेग को रोकने से - विसर्प, कोठ, कुष्ठ, आँख के रोग, कण्डू, पाण्डु, ज्वर, कास, श्वास, जी मचलना, व्यंग और श्वयथु होते हैं। व्यंग मुख पर काली झाई या चकत्ते पडना।

गण्डूषधूमानाहारा रुक्षंभुक्त्वा तद्वमः।

व्यायामः स्त्रुतिरस्त्रस्य शस्तं चात्र विरेचनम् ॥ 18

सक्षारलवणं तैलमभ्यङ्गार्थं च शस्यते।

चिकित्सा - गण्डूष, धूम्रपान (औषधीय), उपवास करना, रुक्ष अन्न खाकर उसी अन्न का वमन करना, व्यायाम, रक्तोमोक्षण और विरेचन इसमें प्रश्स्त है। मालिश के लिए यवक्षार और लवण से मिला तैल उत्तम है।

वीर्यस्खलन के वेग रोकने से रोग -

शुक्रात्तत्स्रवणं गुह्यवेदनाश्वयथुज्वराः।

हृद्वयथामूत्रसङ्गाङ्गभङ्ग वृद्धयशमषण्ढताः ॥ 19

शुक्र के वेग को रोकने से - शुक्र का स्रवण, गुह्य वेदना (मेहन तथा वृषणोंमे दर्द), शोथ, ज्वर, हृदय में पीडा, मूत्र का अवरोध अङ्गों का टूटना; वृद्धि, पथरी और नपुंसकता होती है।

शालिबस्त्यभ्यङ्गावगाहनम्

वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं भजेत्क्षीरं ॥ 20

चिकित्सा - शालि, बस्ति, अभ्यङ्ग और अवगाहन इनका सेवन करे। वस्ति का शोधन करने वाले (कूष्मांड, यवक्षार आदि) द्रव्यों से सिद्ध दूध का पान करें।

असाध्य रोग -

तृट्शुलार्तं त्यजेत् क्षीणं विड्भं वेगरोधिनम् ॥ 21

वेगरोधजन्य रोगों की असाध्यता - जो वेगरोधी रोगी प्यास एवं शूल से पीडित हो, जिसकी धातु क्षीण हो गयी हो और जो मल का वमन करता हो, उसकी चिकित्सा न करें।

वेगरोधजन्य रोगों में कर्त्तव्य -

रोगा: सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरव धारणै:।

अनुपस्थित वेगों को प्रवृत्त करने और उपस्थित वेगों को रोकने से ही सब रोग उत्पन्न होते हैं।

निर्दिष्टं साधनं तत्र भूयिष्ठं ते तु तान् प्रति॥ 22

ततश्चानेकधा प्राय: पवनो यत्प्रकुप्यति।

अन्नपानौषधं तत्र युञ्जीतातोऽनुलोमनम्॥ 23

वेग धारण से जो रोग प्राय: होते हैं, उनके लिए सामान्य चिकित्सा कह दी है, क्योंकि वेगों को रोकने से वायु अनेक प्रकार से प्राय: कुपित होता है और अनेक प्रकार के विकारों को उत्पन्न कर सकता है। इसलिए वेगरोध जनित विकारों में वायु का अनुलोमन करने वाला खान पान एवं औषध बरतना चाहिए।

रोकने योग्य वेग -

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च।

लोभेष्यर्शाद्विषमात्सर्यरागादीनां जितेन्द्रिय:॥ 24

धारणीय वेग - इस लोक में और परलोक में हित चाहने वाला मनुष्य जितेंद्रिय बनकर सदा निम्न वेगों को रोके। लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य, रागादि ईर्ष्या-दूसरे के उत्कर्ष को न सहना। राग विषयासक्ति। मात्सर्य - दूसरे के शुभ के साथ द्वेष।

वातादि मलों का यथा काल शोधन -

यतेत च यथाकालं मलानां शोधनं प्रति।

अत्यर्थसञ्चितास्ते हि क्रुद्धा: स्युर्जीवितच्छिद:॥ 25

मलों के शोधन के लिए यथा समय प्रयत्न करता रहे क्योंकि ये मल अतिशय संचित होकर, क्रुद्ध होकर जीवन का नाश करने वाले हो सकते हैं।

-: सेवामृतम् :-

जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने घायल सर्प-सर्पणी की सेवा करके तो महात्मा बुद्ध ने घायल हंस की सेवा करके, ईसामसीह ने रोगियों की सेवा करके जो आदर्श प्रस्तुत किया था उसे मदर टेरेसा, सुभाष चंद्र बोष, महात्मा गांधी, बाबा आप्टे, डॉ. कैलाश अग्रवाल तथा कैलाश 'मानव' (नारायण सेवा संस्थान) आदि ने जीवंत रखा एवं आगे बढाया।

परिच्छेद - 5

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

आयुर्वेद के अनुसार मानसिक तनाव से रोग -

अभिघाताभिचाराभ्यामभिषङ्गभिषापत:।

आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत्॥ 21

माधव निदानम् (ज्वरनिदानम्) पृ. - 32

अभिघात, अभिचार कर्म, अभिशाप तथा अभिषङ्ग से चार प्रकार के आगन्तुक ज्वर उत्पन्न होते हैं। इसमें कारणानुसार दोषों की कल्पना करनी चाहिए।

अभिघात ज्वर -

लाठी तथा अन्य शस्त्रों के प्रहार के कारण रक्तस्राव या पीडाधिक्य से होने वाला ज्वर अभिघातज ज्वर कहलाता है।

अभिचार ज्वर -

शत्रुको नष्ट करने के निमित्त प्रयुक्त अभिचार कर्मों से ज्वर होता है उसे अभिचारज ज्वर कहते हैं।

अभिशापज ज्वर -

तपस्विजनों के शाप के कारण उत्पन्न ज्वर को अभिशापज ज्वर कहते हैं।

अभिषङ्ज ज्वर -

काम, क्रोध तथा भय आदि मानसिक कारणों एवं भूत (देवादिग्रह तथा जीवाणु) सम्बन्ध से होने वाले ज्वर को अभिषङ्गज ज्वर कहते हैं।

कामज्वर लक्षण -

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमभोजनम्।

हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति॥ 28

काम ज्वर में चित्तविभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, भोजन की अनिच्छा, हृदय प्रदेश में वेदना तथा मुख का सुखना, ये लक्षण होते हैं।

भयादिजन्यमागन्तु ज्वर -

भायात् प्रलाप: शोकाच्च भवेत् कोपच्च वेपथु:।

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते॥ २९

भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम्। सु. उ. तं. अ. 29

भयज तथा शोकज ज्वर में प्रलाप होता है। क्रोधजन्य ज्वर में कम्पन होता है। अभिचार और अभिशापजन्य ज्वर में मूर्छा तथा प्यास होती है, भूताभिषङ्गज ज्वर में कभी घबराहट, कभी हँसी और कभी रोने की प्रवृत्ति तथा कम्पन होता है।

कामशोकभयक्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः।
सोऽभिषङ्गजज्वरो यश्च भूताभिषङ्गज॥

अभिप्रेत कामिनी की अप्राप्ति से कामज्वर उत्पन्न होता है। काम ज्वर में रोगी को गहरे-गहरे श्वास आते हैं तथा कुछ ध्यानमग्न-सा रहता है। इनके अतिरिक्त रोगी का धैर्य, लज्जा, निद्रा नष्ट हो जाती है, शरीर में दाह एवं भ्रंश होता है। वाग्भट ने भी कहा है -

कामाद् भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः।

कामशोकभयाद्वायु -

इस वचन के अनुसार काम, शोक और भय से वायु की वृद्धि होती है, इस प्रकार शोकज और भयज ज्वर में वात का कार्य कलापों में मिलता है। यद्यपि कम्पन वात का कार्य है, वह पित्त के वर्द्धक क्रोध से उत्पन्न न होना चाहिए तथापि क्रोधजन्य पित्त, वात को भी प्रकुपित करके इस लक्षण को उत्पन्न कर देता। **'एकः प्रकुपितो दोषः सर्वानेव प्रकोपयेत्।'** इसके अतिरिक्त क्रोध से पित्त के समान वायु की भी वृद्धि होती है, क्योंकि विदेह ने कहा है -

'क्रोधशोकस्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपणौ।'

कोपज ज्वर में शिरोवेदना भी होती है और नेत्र लाल रहते हैं।

क्रोधात्कम्पः शिरोरूक् च प्रलापो भयशोकजः। (वा.नि.)

शिरोरूगरुचिर्ध्यानं नेत्ररागश्च कोपने। (सि.नि.)

यद्यपि भयज आदि सभी ज्वर मानसिक है किंतु फिर भी चिकित्सा वैशिष्ट्य के लिए प्रत्येक का वर्णन पृथक् किया गया है।

आगन्तुज्वर में दोषानुबन्धता -

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः॥ 30

भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः॥ (च.चि.अ.3)

काम, शोक तथा भय से वायु का प्रकोप होता है, क्रोध से पित्त का प्रकोप होता है, भूताभिषङ्ग से तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं तथा तत्तद्भूत के लक्षण भी प्रकट होते हैं।

भूत शब्द का तात्पर्य देव, असुर, गन्धर्व आदि से है, इनके सम्पर्क से उत्पन्न ज्वरों से प्रायः त्रिदोष प्रकोप के कारण दोषज लक्षण भी होते हैं, साथ ही जिस विशिष्ट ग्रह

का सम्पर्क होता है उसके अनुसार भी रोदनादि लक्षण होते हैं। भूत शब्द का सामान्य अर्थ प्राणी भी होता है, इस प्रकार जीवाणु का भी समावेश भूताभिषङ्गज आगन्तु ज्वरों में हो सकता है। कुछ लोग भूत और अभिषङ्ग शब्दों को अलग-अलग मानकर भूत से देवादिग्रह और अभिषङ्ग से कामादि का अभिषङ्ग मानते हैं।

उन्माद का सामान्य हेतु -

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः॥ 14

विरुद्ध (संयोगादि विरुद्ध) दुष्ट तथा अपवित्र भोजन करने से देवता, गुरु या माता-पिता और ब्राह्मणों का अपमान करने से, अत्यधिक भय या अत्यधिक हर्ष के कारण मन पर प्रभाव पडने से, शरीर की विषम चेष्टाओं या मन पर अघात लगने से उन्माद रोग की उत्पत्ति होती है।

विरुद्ध आदि भोजनों में साक्षात् मन के सत्वगुण का ह्रास होने से उन्माद की उत्पत्ति होती है। तिरस्कृत हुए देवता तथा गुरुजन दुःखी होकर यदि इस प्रकार का शाप दे दें तब भी मनुष्य पागल हो सकता है; क्योंकि उनकी वाणी में इस प्रकार की शक्ति निहित रहती है। यह भवभूति के निम्न कथन से सिद्ध है -

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्त्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

कभी अधिक हर्ष और कभी अधिक दुःख से भी उन्माद रोग की उत्पत्ति देखी गयी है। भय और हर्ष से काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा शोक जैसे मानसिक भावों को भी ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि इनकी अत्यधिकता भी उन्माद की जननी है। इनके अतिरिक्त स्वभाव या शिक्षणमय भाव प्रतिक्रिया (Emotional reflexion) तथा घटनाजन्य प्रतिक्रिया (Conditional reflexion) भी उन्माद के हेतु हैं। मन की स्वाभाविक दुर्बलता भी उन्माद का हेतु है। कुछ शारीरिक रोगों से शरीर के दुर्बल हो जाने के पश्चात् मन भी दुर्बल हो जाता है एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति तथा शारीरिक रोगों की वृद्धि होती है। उपर्युक्त कारणों से मन हीनसत्त्व हो जाता है तथा मनुष्य की प्रवृत्तियों के उच्छृङ्खल एवं निष्प्रयोजन होने से उन्माद रोग उत्पन्न होता है। घटनाजन्य प्रतिक्रिया का एक ज्वलन्त उदाहरण भी है - एक स्त्री का पति युद्ध क्षेत्र में मारा गया, जिसकी सूचना उसे टेलीफोन के द्वारा दी गयी। इसके बाद टेलीफोन की घन्टी बजने की आवाज सुनकर वह सदा मूर्छित हो जाती थी। इसी प्रकार उन्माद की भी उत्पत्ति हो सकती है।

उन्माद -

तैरल्पत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।
स्रोतांस्याधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ 5

अपने-अपने कारणों से प्रकुपित हुए वातादि दोष सत्त्वगुण की कमी वाले अथवा दुर्बल मन वाले मनुष्य की बुद्धि की निवास स्थान हृदय को दूषित करके तथा मनोवाही स्रोतों में व्याप्त होकर मनुष्य के चित्त को भ्रांतियुक्त या उन्मत्त कर देते हैं।

उन्माद का सामान्य रूप -

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधारिता च।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्॥ 6

बुद्धि में भ्रम का होना, मन की चंचलता, आँखों को चुराना या व्यर्थ ही इतस्ततः देखना, चित्त की अस्थिरता, असम्बद्ध प्रलाप करना तथा हृदय की शून्यता या आत्मज्ञान का अभाव, ये उन्माद रोग के सामान्य लक्षण हैं।

उन्माद पीडित रोगी को बुद्धि तथा स्मृति-विभ्रम हो जाता है, जिससे वह किसी निश्चित कार्य को न करके अस्थिर चित्त से निष्प्रयोजन परस्पर असम्बद्ध क्रियायें किया करता है। रोगी को अपने स्वरूप का किञ्चित्मात्र का भी ज्ञान नहीं रहता है। वह कर्तव्य को अकर्तव्य तथा अकर्तव्य को कर्तव्य समझता है। हित और अहित में अन्तर नहीं कर सकता। रोगी को व्यर्थ ही अनेक प्रकार की शंकाएँ रहा करती हैं। उन्माद का रोगी आँखे भी चुराता है। उसे सुख-दुःख, आचार, धर्म आदि का भी ज्ञान नहीं रहता है। कहा है -

स मूढचेता न सुखं न दुःखं नाचारधर्मो कुतः एव शान्तिम्।
विन्दत्यपास्तस्मृतिबुद्धिसंज्ञौ, भ्रमत्ययं चेत इतस्ततश्च॥

अपस्मार रोग के कारण -

अपस्मारस्य सम्प्राप्तिं सामान्यं स्वरूपं चाहः
चिन्ता शोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतासि स्थिताः।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते॥ 1 - पृ. 136
तमः प्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः॥ 2

चिंता, शोक आदि के कारणों से प्रकुपित हुए दोष हृदय (मस्तिष्क) के स्रोत पर प्रभाव डालते हैं और स्मृति का विनाश करके अपस्मार रोग को उत्पन्न करते हैं।

दोषों के प्रकोप से बुद्धि अपहृत होने पर आँखे के आगे अंधेरा छा जाता है और रोगी अज्ञानरूप अंधकार में प्रवेश करता है, नेत्र विकृत हो जाते हैं तथा रोगी हाथ-पैर भी

फेंकता है। इस भयंकर व्याधि को अपस्मार कहते हैं और यह चार प्रकार की होती हैं।

यह रोग चिंता, काम, क्रोध, शोक तथा उद्वेग जैसे मानसिक कारण एवं शिरोभिघात अथवा मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis) मस्तिष्कगत रक्तस्राव तथा मस्तिष्क/बुद्धि जैसे शारीरिक कारणों से सत्वगुण की हीनता एवं रज और तमगुण की प्रबलता होने पर उत्पन्न होता है। स्वभावतः दुर्बल मन वाले मनुष्यों में यह अधिक पाया जाता है। उपर्युक्त कारणों से प्रकुपित हुए दोष मस्तिष्क, मस्तिष्कगत इंद्रियाधिष्ठानों तथा वातनाडियों में आश्रित होकर अपस्मार को उत्पन्न करते हैं।

आध्यात्म से रोग मुक्ति -

ग्रंथिमोचन का कार्य अध्यात्म का है। यहाँ आयुर्वेद और अध्यात्म का मिलन होता है। अध्यात्म का काम है कि वह इन दोषों के प्रभाव से मन को बचायें। आयुर्वेद ने इतना मात्र बता दिया कि शोक और भय से कौन सा भाव प्रभावित होता है, पर उसने शोक, भय आदि को मिटाने का उपाय निर्दिष्ट नहीं किया। उसने नहीं बताया कि उन दोषों के विकोपन को कैसे मिटायें ? आयुर्वेद में यत्र-तत्र इसका यत्किञ्चित् निर्देश है, पर वह पर्याप्त नहीं है। अनेक ऐसी औषधियाँ बतायी हैं, जिनसे ये दोष शांत होते हैं, इनका शमन होता है किंतु इनके सर्वाङ्ग निर्मूलन का उपाय आयुर्वेद के पास नहीं है।

अध्यात्म के द्वारा इन तीनों दोषों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। अध्यात्म के आचार्य ने कहा है -

वातं विजयते ज्ञानं, दर्शनं पित्त वारणम्।
कफनाशाय चरणं, धर्मस्तेनामृतायते ॥

ज्ञान, वायु के प्रकोप को शांत करता है; दर्शन पित्त के प्रकोप को शांत करता है और चारित्र कफ के प्रकोप को शांत करता है।

बडा अजीब लगता है कि कहाँ ज्ञान, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी और कहाँ वात, पित्त और कफ की त्रिपदी ? कहाँ का सम्बन्ध कहाँ जोडा गया है ? यही अध्यात्म की रहस्यवादी धारा है। रहस्यवादी धारा में संतों ने अध्यात्म को इतने रहस्यमय ढंग से प्रस्तुत किया है कि साधक उन रहस्य सूत्रों को सहसा पकड नहीं पाते हैं, वे सूत्र बहुत अटपटे लगते हैं, पर गहराई में जाकर देखने पर वे यथार्थ प्रतीत होते हैं।

ज्ञान वायु पर विजय प्राप्त करता है। ज्ञान का कार्य है - मन को निष्काम बनाना। इच्छा मुक्त बनाना - ''भवेद्ज्ञानान्मनोऽनिच्छ'' जैसे-जैसे ज्ञान का विकास होगा, वैसे-वैसे इच्छायें समाप्त होती जायेगी, इच्छायें जितनी तीव्र होती हैं, आदमी उतनी ही मात्रा में अज्ञानी होता है। ज्ञान और इच्छा दोनों का संगम नहीं हो सकता, दोनों साथ नहीं रह

सकते। तीव्र आकांक्षा, तीव्र इच्छा, अज्ञान का प्रथम लक्षण है। ज्ञान का जैसे ही विकास होगा, इच्छायें अल्प होती जायेंगी। जहाँ इच्छायें होंगी वहाँ काम, शोक और भय होगा। काम, शोक और भय तीनों वायु को बढाते हैं, प्रकम्पित करते हैं। अब हम यह सोचें कि क्या ज्ञान के द्वारा वायु का प्रकोप शांत किया जा सकता है ? इसका उत्तर है कि जब ज्ञान के द्वारा इच्छाओं को कम किया जा सकता है, तो इच्छा से उत्पन्न होने वाले काम, शोक और भय को भी कम किया जा सकता है। जब उनको कम किया जा सकता है तो उनसे उत्पन्न होने वाले वायु के प्रकोप को कम क्यों नहीं किया जा सकता ? कम किया जा सकता है। यही पूरी कार्य करने की शृंखला है।

दर्शन के द्वारा पित्त का प्रकोप शान्त होता है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण खोज है। पित्त या क्रोध का दृष्टिकोण दर्शन के आधार पर होता है। पित्त का कार्य है - उत्तेजना पैदा करना, चंचलता और क्रोध पैदा करना, आवेश पैदा करना - ये सारे दृष्टिकोण के आधार पर होते हैं। गहराई में उतरकर देखने से पता चलेगा कि क्रोध का बहुत बडा कारण है - दृष्टिकोण। जिस व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण गलत बन जाता है तो उसके अच्छे से अच्छे कार्य के प्रति भी क्रोध आ जायेगा। जिसके प्रति दृष्टिकोण सही बना हुआ है, वह बडी गलती करता है, फिर भी उसके प्रति क्रोध नहीं आता। जिस सास का अपनी बहु के प्रति गलत दृष्टिकोण बन गया तो बहु के प्रत्येक कार्य में कोई न कोई त्रुटि दिखायी पडेगी, वह दृष्टिकोण उत्तेजना पैदा करता रहेगा। जिस पिता का अपने पुत्र के प्रति गलत दृष्टिकोण गलत बन जाता है तो पुत्र चाहे तो कितना ही अच्छा काम करे, पिता उस पर उत्तेजित होगा, उसमें दोष ही निकालेगा।

क्रोध की उत्पत्ति में बहुत बडा कारण है - दृष्टिकोण। बहुत सही कहा है, ''दर्शनं पित्तवारणम्'' जब सम्यग्दर्शन हेाता है, दृष्टिकोण सही होता है तब पित्त का प्रशमन होता है। दृष्टिकोण सही है तो पित्त को उत्तेजित करने का अवसर ही नहीं मिलता। जिन लोगों को एसिडिटी अधिक बनती है, उन्हें ध्यान देना चाहिए कि कहीं उनका दृष्टिकोण गलत तो नहीं है, उन्हें आत्मालोचन करना चाहिए। एसिडिटी की अधिकता यह सूचित करती है कि अवश्य ही दृष्टिकोण गलत है, दृष्टिकोण का दोष है।

दृष्टिकोण के दोष को मिटाने पर सम्भव है कि एसिडिटी कम हो जाये। जब दृष्टिकोण सम्यक् बन जाता है, आध्यात्मिक बन जाता है, समतापूर्ण बन जाता है तब सम्भवत: पित्त का प्रकोप भी शान्त हो जाता है और क्रोध भी नहीं आता।

महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सन्त हुए हैं - सन्त नामदेव। वे बहुत बडे साधक थे। वे इतने बडे वैरागी थे कि यदि अनेक दिनों तक उन्हें भोजन नहीं मिला तो विचलित नहीं होते

थे। एक बार कई दिनों में आटा मिल गया, वे रोटी बनाने बैठे, रोटियां बनाकर रख दी और इधर-उधर चले गये। इतने में ही कुत्ता आया और चार रोटियां बनी रखी थी उन्हें उठाकर ले गया, इतने में सन्त नामदेव आ गये, उन्होंने देखा कि कुत्ता सारी रोटी ले जा रहा है, तो वे उसके पीछे दौडे, गुस्से में आकर नहीं, कुत्ते को मारने के लिए नहीं, रोटी छुडाने के लिए नहीं, बल्कि साथ में घी का बर्तन लेकर दौडे और बोले - ''अरे, कुत्ते भाई ! रोटियां ले जा रहे हो, तो सूखी क्यों ले जा रहे हो ? जरा ठहरो, मैं सारी रोटी चुपड देता हूँ।'' सन्त नामदेव पूर्ण प्रसन्नता के साथ यह कह रहे थे, कहीं आवेश नहीं, क्रोध नहीं, अन्यथा भाव नहीं।

प्रश्न है कि क्रोध क्यों नहीं आया ? इसका सीधा-सा उत्तर है कि, उनका दृष्टिकोण बदला हुआ था, पित्त का प्रकोप नहीं हुआ, इसीलिए क्रोध नहीं आया। पित्त का प्रकोप इसलिए नहीं हुआ क्योंकि उनका दृष्टिकोण अध्यात्मिक था; समतामय था। उन्होंने सोचा - मैं खाता हूँ चूंकि मैं एक प्राणी हूँ, तो कुत्ता भी प्राणी है, उसे भी खाने का अधिकार है। प्राणी-प्राणी में क्या अन्तर होता है ?

जिस व्यक्तिका दृष्टिकोण सम्यक् हो जाता है, यथार्थ और सत्यपूरक हो जाता है, उसमें पित्त के प्रकुपित होने की सम्भावना नहीं रहती। उसमें क्रोध नहीं उभरता। इस दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है - ''दर्शनं पित्तवारणम्।'' दर्शन पित्त अवरोधक तत्त्व है।

आगे कहा गया है - ''चरणं कफनाशाय।'' चारित्र से कफ का प्रकोप शांत होता है। समता, अहिंसा और सत्य के आचरण से, प्रामाणिक व्यवहार से कफ का प्रशमन होता है। सुनने में यह भी बहुत दूर की बात लगती है। हो सकता है कि लिखने वाले आचार्य ने किसी चिंतन के मूड में लिखा होगा ? उनके सामने कौन सी दृष्टि होगी। मैं उससे अनजान हूँ, मैंने जो समझा है, वह मैंने प्रस्तुत किया है कि कफ का एक कार्य है, मूर्च्छा पैदा करना। आयुर्वेद का यही सिद्धान्त है कि कफ मूर्च्छा पैदा करता है, भ्रम का उत्पन्न होना, चक्कर आना, चेतना का लुप्त हो जाना यह सब कफ के प्रकोप से होता है। चारित्र भ्रष्ट क्यों होता है ? चारित्र की विकृति, आचरण और व्यवहार की अशुद्धि क्यों होती है ? इन सबका कारण है मोहनीय कर्म, मूर्च्छा; कर्म शास्त्र के अनुसार चारित्र में जितने विकार आते हैं, वे मोहनीय कर्म के कारण आते हैं। मोहनीय कर्म मूढता पैदा करता है, मूर्च्छा उत्पन्न करता है और चेतना की जागृति को लुप्त करता है। जब चेतना की जागृति समाप्त होती है, मूढता और मूर्च्छा जागती है तब चारित्र विकृत होता है। जब चारित्र का विकास होता है तब जागृति का विकास होता है। मूर्च्छा समाप्त होती है और जब मूर्च्छा समाप्त होती है, तब कफ का प्रकोप नहीं होता, कफ कुछ भी काम नहीं कर

सकता। कफ का कार्य है - जडता पैदा करना और चारित्र का काम है - चेतना की जागृति, करना चेतना की जागृति होने पर जडता टिक नहीं सकती। ''जाड्यं'' कफ का खास लक्षण है। जब शरीर में कफ का प्रकोप बढता है तब शरीर जकड जाता है, अकड जाता है, स्तब्ध हो जाता है। चेतना की जागृति से यह स्तब्धता नष्ट हो जाती है।

तीन दोष है - वात, पित्त और कफ। तीनों को मिटाने के लिए तीन आध्यात्मिक उपाय हैं - ज्ञान, दर्शन और चारित्र। जब वे तीनों शारीरिक दोष उपशांत होते हैं, तब ही अशुद्ध भावधारा नीचे चली आती है और शुद्ध भावधारा बहने लग जाती है।

ध्यान साधक का एक मुख्य उद्देश्य है कि शुद्ध भावधारा जागृत रहे, प्रवाहमान रहे। श्वास-प्रेक्षा, अन्तर्यात्रा ये सब शुद्ध भाव-धारा को जागृत रखने के आलम्बन हैं।

आयुर्वेद के आचार्यों ने कहा है-रोग तीन प्रकार के होते है-

1. बाहरी परिस्थिति के निमित्त से होने वाले रोग।

2. बात, कफ और पित्त-शरीर के इन तीनों दोषों के असन्तुलन से होने वाला रोग।

3. कर्मज रोग।

यह तीसरे प्रकार का रोग सूक्ष्म शरीर की बीमारी है। वहाँ न कोई कीटाणु है, न जर्म्स हैं, न वात, पित्त और कफ है, कुछ भी नहीं, वह कर्म से उत्पन्न होता है, जो कर्मज रोग है, केवल कर्मज। यह पुराने संस्कारों के कारण उत्पन्न होता है।

अन्तरतम का परिवेश है-तीसरा आयाम। हम तीनों आयामों-स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर में प्रस्थान करें। एक आयाम में हम न उलझें, न अटकें। हम दूसरे आयाम में जायें और तीसरे में प्रवेश करें। तीनों आयामों में जाकर ही हम अपने व्यक्तित्व को पूरा व्याख्यायित कर सकते हैं और समाधान पा सकते हैं।

भाव परिष्कार : सही उपचार-उदाहरण-1

एक स्त्री अपने पति के कटु-व्यवहार से अत्यन्त दु:खी थी। इस दु:ख के कारण उस स्त्री मृत्यु हो गयी। इससे पति को बहुत बडा मानसिक (आघात) धक्का लगा जिससे वह क्षयरोग से ग्रस्त हो गया। मनोवैज्ञानिक परीक्षण हुआ। परीक्षण से पता चला कि इस रोग का कारण शारीरिक न होकर मानसिक है और मानसिक कारण है आत्मग्लानि। डाक्टरों ने योग्य मानसिक चिकित्सालय में उनको भेज दिया। मानसिक चिकित्सा से कुछ ही दिनों में वे क्षयरोग से मुक्त हो गये।

(प्रायश्चित्त) एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा विधि -उदाहरण-2

विदेश में एक बहुत बडे मनोवैज्ञानिक चिकित्सक 'डॉ. कलेरे संलीव' जब

सिरदर्द, निद्रा, हाइपर एसिडिटी आदि रोग से ग्रस्त व्याधि का कारण शारीरिक दृष्टिकोण से शोध कर न सके तब उसने पूरे आत्मीय एवं प्रेमभाव से रोगी से कहा- बेटे सच बताओं, तुम्हारे मन में क्या दबा हुआ है? तुम्हारे अन्तरंग की बात बताने पर ही सम्भव है कि मैं रोग का सही-सही निदान एवं उपचार कर सकूं।

तब रोगी डॉ. संलीव के प्रेम सुझाव से बोला - मेरा एक भाई विदेश में रहता है उसे धोखा देने का पाप मेरे मन में आ गया। फलत: मैं पैतृक सम्पत्ति में जो मेरे भाई का हिस्सा है, उसे हडपने के षडयंत्र (जालसाजी) में संलग्न हूँ। डॉ. संलीव ने रोग का वैज्ञानिक कारण खोज निकाला। डॉ. ने रोगी को निरोग हो जाने का आश्वासन दिया। उससे भाई के नाम एक पत्र लिखवाया। उस पत्र में रोगी ने अपने कृत कारनामे को स्पष्ट स्वीकार किया और उस त्रुटि के लिए भाई से क्षमा मांगी। डॉ. साहब ने प्रायश्चित्त के स्वरूप उससे हडपने की राशि का चेक लिखवाया व डॉ. साहब ने लेटर बॉक्स तक रोगी के साथ जाकर पत्र पेटी में डाल दिया। पत्र डालते ही रोगी फूट-फूटकर रोने लगा। उसने कहा कि धन्यवाद डॉ. साहब! अब मेरी सभी बीमारियाँ दूर हो गयी हैं तब से वह रोगी सम्पूर्ण रूप से निरोगी हो गया।

धार्मिक दृष्टिकोण से इसी को प्रायश्चित कहते हैं। प्रायश्चित विधि प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय में है। विशेष करके जैन धर्म में। प्रात:काल एवं संध्या के समय प्रायश्चित्त लेने का विधान है।

रात्रि में किये गये ज्ञात, अज्ञात या प्रमादवशत: निम्नश्रेणीय कीटपतंग से लेकर उच्च स्तरीय मानव तक किसी के प्रति भी किसी भी प्रकार मन से, वचन से, काया से अपराध होने पर परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से स्व-साक्षी अथवा परसाक्षी पूर्वक क्षमा याचनापूर्वक प्रायश्चित प्रात:काल लेते हैं। इसी प्रकार दैवसिक अपराध के लिए संध्या के समय प्रायश्चित्त लेते हैं। जैनों के प्रतिक्रमण में आद्य पाठ निम्न प्रकार है -

जीवे प्रमाद जनित: प्रचुरा प्रदोषा।
यस्मात् प्रतिक्रमणत: प्रलयं प्रयान्ति।। 1 प्रतिक्रमण पाठ

प्रमाद (असावधान) वशत: जीवों के प्रति प्रचुर रूप से जो दोष होते हैं वे दोष प्रतिक्रमण के माध्यम से नष्ट हो जाते हैं। प्रतिक्रमण का अर्थ - कृत दोष को स्वीकार करना। कोई व्यक्ति, अन्याय, अनुचित, अनैतिक, अधार्मिक कार्य करते ही उसकी अन्तर्चेतना जान लेती है कि कुछ विपरीत व अप्राकृतिक कार्य हुआ है, इससे मानसिक शांति व सन्तुलन बिगड जाता है, जिससे शरीर का नाडीतंत्र व ग्रंथितंत्र प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। फलत: मानसिक अस्वस्थता हो जाती है। उस मानसिक अस्वस्थता के

कारण शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। जब तक भूल का सुधार नहीं हो जाता तब तक यह मानसिक और शारीरिक अस्वस्थता बनी रहती है। भूल का सुधार होते ही रोगी स्वस्थ हो जाता है। पहले धर्मात्मा लोग दोष होने के बाद इसीलिए क्षमा-याचना करते थे।

खम्मामि सव्व जीवाणां सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि॥ 3 पतिक्रमण पाठ

मैं सहृदय, सम्पूर्ण जीव-जगत् को क्षमा करता हूँ, सर्व जीव-जगत् मुझे भी क्षमा करें। सम्पूर्ण जीवों के प्रति मेरी मैत्री भावना है अर्थात् सम्पूर्ण जीव मेरे मित्र के समान हैं। किसी के प्रति भी मेरा वैर भाव नहीं है।

उदाहरण - 3

अमेरिका (न्यूजीलैंड) के एक '' डॉ. नारमन वीसेंर पील''। वे चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और न्यूजमी चर्च के प्रवक्ता भी हैं। एक युवती ने डॉ. साहब से कहा - चर्च में आते ही मेरे शरीर में बुरी तरह से खुजली चलने लगती है और शरीर में लाल चकते हो जाते हैं। यदि यही हालत रही तो मुणे चर्च में आना छोडना पडेगा।

अन्तर्मन की पर्तों को कुरेदने से (जांच करने पर) डॉ. साहब ने पाया कि यह ''इण्टरनल एग्जिमा'' से पीडित है इसका कारण शारीरिक और बाह्य नहीं है, इसका मानसिक एवं अन्तरङ्ग कारण है। ''इमोशनल टेन्सन'' भावात्मक तनाव के कारण इस प्रकार हुआ है। जब डॉ. ने युवती से पूछा तब युवती बोली - मैं एक बडी कम्पनी में एकांउटेन्ट का काम कर रही थी उस अवधि में मैं गोल-माल करके धन चुराया करती थी। हर बार सोचती थी कि चुराई हुई रकम वापिस कर दूंगी लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकी। ऐसा कहकर वह फफक्-फफक् कर रोने लगी। तब डॉ. बोले- तुम्हारे मन में अपराध की भावना घर कर गयी है, जब चर्च के पवित्र वातावरण में आती हो तब उसमें तीव्रता आ जाती है। यह रोग भावना क्षोभ जनित है। इससे छूटने का एक ही उपाय है ! मालिक के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लेना। तुम जाओ, मालिक के सामने अपना अपराध स्वीकार करो। इससे सम्भवत: आपको मालिक कार्य से निकाल भी सकता है। युवती वहाँ से मालिक के पास गई तथा पदवी को नहीं चाहते हुए समस्त वृतान्त स्पष्ट रूप से मालिक से कहकर क्षमा मांगी तब से उसका एग्जिमा रोग समाप्त हो गया तथा उसकी पदोन्नति हो गयी।

भय से अतिसार रोग हो जाता है, तथा चिंता से अपस्मार रोग होता है,डर से धडकन बढ जाती है, रक्तचाप बढ जाता है, तीव्र ईर्ष्या और घृणा से अल्सर रोग हो जाता है, आत्म ग्लानि से क्षयरोग (टी.बी.) हो जाता है, अति स्त्री संभोग से टी.बी., कुष्ट रोग,

नपुंसकता आदि रोग हो जाते हैं। चिंता, क्रोध,घृणाभाव आदि से मानसिक विकृतियाँ हो जाती हैं जिससे मनुष्य को अनेक शारीरिक रोगों के साथ-साथ मानसिक रोग-पागलपन हो जाता है।

क्रोध से बुढापा -

गुस्सा, उदासी, चिंता, घृणादि भाव हमारी त्वचा पर एक गहरा असर डालते हैं। जिस समय हमें क्रोध आता है उस मसय शरीर में एक ऐसे रस का संचार होने लगता है जो चेहरे की तरफ के रक्त संचार को रोकता है, इसके कारण त्वचा का रङ्ग पीला या विवर्ण हो जाता है। अधिक क्रोध आने पर चेहरे पर झुर्रियाँ जल्दी पड जाती हैं। खुश-संतोषी रहने पर चेहरे पर लाली और चमक रहती है, इस प्रकार चिंता या तनाव से केवल शारीरिक क्षति ही नहीं होती, बल्कि आन्तरिक व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त हो जाती है। फलत: पाचन क्रिया पर भी दु:ष्परिणाम पडता है जिससे पाचनक्रिया भी बिगडने लगती है। अन्तत: हृदय की अन्यान्य बीमारियाँ पैदा हो जाती है। इस प्रकार मानसिक दूषित भाव शरीर के ऊपर, मन के ऊपर, आत्मा के ऊपर, स्व-पर के ऊपर दूषित प्रभाव डालता है। इन दूषित भावों से केवल इहलोक नहीं किंतु परलोक में भी अनेक कष्टों को उठाना पडता है।

उदाहरण - 4

एक युवा अफसर ने, जो कुछ दिनों की छुट्टी लेकर घर आया था, मुझसे अपनी सास का इलाज करने के लिए कहा। उसकी सास बडी सुखदायक परिस्थितियों में रह रही थी फिर भी अपने और अपने परिवार के जीवन में एक निरर्थक विचार द्वारा कडवाहट भर रही थी। मैंने देखा कि वह 53 वर्ष की मधुर और सरल स्वभाव वाली महिला थी और उसने बिना संकोच अपने बारे में निम्न वृतान्त बताया - वह अपने विवाह से बडी सुखी थी। अपने पति के साथ, जो एक बडी फैक्ट्री का मैनेजर है, देहात में रहती है, उसका पति हद से ज्यादा दयालु है। उन्होंने 30 वर्ष पहले प्रेम विवाह किया था और तब से उनमें कभी मन-मुटाव, झगडा या क्षणभर की भी ईर्ष्या पैदा नहीं हुई थी। उनके दोनों बच्चों का विवाह बहुत अच्छी जगह हुआ, पर उसका पति अपनी कर्तव्य- भावना के कारण अब भी कार्य में जुटा हुआ है। एक वर्ष पहले एक अविश्वसनीय और उसकी समझ में न आने वाली बात हुई। उसे किसी ने बिना नाम का पत्र लिखकर यह सूचना दी कि उसका गुणी पति एक नौजवान लडकी से सांठगाँठ कर रहा है और उसने तुरन्त इस बात पर विश्वास कर लिया, तब से उसका सुख नष्ट हो गया है। विस्तृत विवरण कुछ-कुछ इस प्रकार था - उसके यहाँ एक नौकरानी थी जिसके साथ वह अपनी निजी बातचीत काफी खुलकर

किया करता था। इस नौजवान औरत के मन में एक और लडकी के प्रति बडी तीव्र घृणा थी जो खास अच्छे घर की न होते हुए भी जीवन में उसकी अपेक्षा अधिक सफल हुई थी। दूसरी नवयुवती ने नौकरी करने के बजाय व्यापार कोर्स की शिक्षा हासिल की थी और वह फैक्ट्री में नौकरानी हो गयी थी, जहाँ कुछ कर्मचारियों को बाहर काम करने के लिये भेजने से कुछ स्थान खाली हो गये और इस तरह वह अच्छे पद पर पहुँच गयी थी। वह फैक्ट्री में रहती थी, सब भले मानसों को जानती थी और सब लोग ''मिस'' कहकर पुकारते थे। जो औरत जिंदगी में पिछड गयी थी, वह अपनी सहपाठिन पर तरह-तरह के दोष लगाया करती थी। एक दिन हमारी रोगिणी और उसकी नौकरानी एक बडी उम्र के आदमी के बारे में बातचीत कर रही थी, जो उसके घर आया था और जिसके बारे में यह कहा जाता था कि वह अपने पत्नी के साथ नहीं रहता है और उसने एक रखैल रखी हुई है। क्यों रखी हुई है यह वह नहीं जानती थी पर उसने एकाएक कहा - उससे भयङ्कर किसी बात की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि मेरा पति रखैल रखता है। अगले दिन डाक से उसे बनावटी लिखावट में लिखा हुआ प्रेषक के नाम से रहित एक पत्र मिला, जिसमें वही सूचना दी गयी थी जिसकी उसने अभी कल्पना की थी। उसने शायद ठीक निष्कर्ष निकाला कि वह पत्र लिखना उस जलनखोर नौकरानी का काम था क्योंकि जिस स्त्री को उसके पति की रखैल बताया गया था, वह वही लडकी थी जिससे यह नौकरानी बडी घृणा करती थी। यद्यपि उसे तुरन्त यह षडयंत्र समझ में आ गया और वह अपने चारों ओर ऐसे कायरतापूर्ण दोषारोपण इतने अधिक देख चुकी थी कि उन पर बिल्कुल विश्वास नहीं करती थी, तो भी इस पत्र से हमारी रोगिणी बहुत उत्तजित हो गई और उसने बुरा-भला कहने के लिए अपने पति को तुरन्त बुलवाया। पति ने हँसते हुए इस दोषारोपण का खण्डन किया और अपने पारिवारिक चिकित्सक को (जो फैक्टरी का डॉक्टर भी था) बुलावा भेजा और उसने उस दुःखी महिला को शांत करने की कोशिश की। उन्होंने जो अगला कदम उठाया, वह भी बहुत तर्कसंगत था। नौकरानी को बरखास्त कर दिया, पर जिसे रखैल बताया गया था उसे कुछ नहीं कहा गया। रोगिणी का कहना है कि तब से मैंने इस मामले पर शांति से विचार करने की कोशिश भी की और मैं उस पत्र की बातों पर विश्वास नहीं करती पर यह धारणा कभी बहुत गहरी नहीं गयी और न कभी बहुत दिन कायम रही। उस नवयुवती का नाम सुनकर या सडक पर उसे देखकर ही सन्देह, पीडा और निंदा का नया दौर शुरु हो जाता है।

यह इस गुणवती स्त्री के ''केस'' का रोग -चित्र है। मन:चिकित्सा का बहुत अनुभव न रखने वाले को भी यह समझ में आ जायेगा कि दूसरे स्नायुरोगियों से इस केस

में यह भेद है कि रोगिणी अपने लक्षणों को बहुत हल्के रूप से पेश करती थी और उन्हें प्रच्छन्न करती थी अर्थात् छिपाती थी और असल में उस गुमनाम पत्र से उसका विश्वास कभी नहीं हट सका।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे केस में मन:चिकित्सक का रुख होता है। यह तो हम पहले ही जानते हैं कि जो रोगी प्रतीक्षा - कक्ष के किवाड बन्द नहीं करता, उसके लाक्षणिक कार्य के बारे में वह क्या कहेगा। वह इसे एक आकस्मिक घटना बताता है जिसमें मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की कोई बात नहीं है और इसलिए उसके सोचने की कोई चीज नहीं है पर इस ईर्ष्यालु महिला के केस में वही रवैया नहीं रख सकता। लाक्षणिक कार्य तो महत्वहीन दिखायी देता है, पर लक्षण इसे गम्भीर मामला बताते हैं। रोगियों को इससे घोर कष्ट हो रहा है और एक परिवार के टूटने का भय है। इसलिए इसमें मन:चिकित्सक लक्षण तो किसी विशेष गुण से नामांकित करने की कोशिश करता है। यह महिला मनोबिम्ब या विचार से अपने को पीडा दे रही है, उसे अर्थहीन नहीं कहा जा सकता। ऐसा सचमुच होता है कि बडी उम्र के पति नौजवान स्त्रियों से सम्बन्ध कायम कर लेते हैं, पर इसमें कुछ और चीज है जो अर्थहीन और समझ में न आने वाली है। रोगिणी के पास यह कल्पना करने के लिए उस गुमनाम चिठ्ठी के अलावा रत्तीभर भी आधार नहीं है कि प्रेमी और विश्वासपात्र पति भी उसी वर्ग का आदमी है जैसे समाज में आमतौर से पाये जाते हैं। वह जानती है कि इस पत्र में कोई प्रमाण नहीं दिया गया। वह इस पत्र के लिखे जाने का कारण संतोषजनक रीति से बता सकती है इसलिए उसे अपने आप से कह सकना चाहिए कि मेरी ईर्ष्या बिल्कुल निराधार है और यह ऐसी कहती भी है पर वह कष्ट इस तरह पा रही है मानो वह अपनी ईर्ष्या को बिल्कुल साधार मानती है। इस तरह के विचार, जिन पर यथार्थता का तर्क और दलीलें प्रभाव नहीं डाल सकती हैं, सर्व सम्मति से भ्रष्ट कहलाते हैं। इसलिए यह भली महिला ईर्ष्या के भ्रम से कष्ट पा रही है। स्पष्टतः इस केस की सारभूत विशेषता यही है।

5 - दूषित मनोभाव से परभव में रोग -

भारत क्षेत्रस्थ रत्नसंचयपुर का राजा श्रीकंठ विद्याधर तथा पट्टरानी श्रीमति एक दिन पूजा करके मंदिर से लौट रहे थे। रास्ते में दिगम्बर जैन मुनि के दर्शन कर उनके उपदेश तथा व्रत प्रतिज्ञा लेकर घर पर लौटे।

राजा ने कर्मोदय से प्रतिज्ञा तोडकर धर्म को छोड दिया और मिथ्यादृष्टि होकर अहिंसामय जैन धर्म तथा आत्मसाधक जैन मुनि की निंदा करने लगा। एक दिन राजा सातसौ वीरों के साथ वन क्रीडा के लिए गये थे, वहाँ दिगम्बर जैन मुनि को देखकर, मुनि

को अपशकुन मानकर, मुनि को कोढी-कोढी (कुष्ठी-कुष्ठी) कहकर समुद्र में डाल दिया। उनकी कृति की सातसौ वीरों ने भी अनुमोदना की। तब भी आत्मसाधक मुनि ने ध्यान नहीं छोडा। तब राजा ने दया से सेवक को निकालने के लिए कहकर वापस आ गये।

कुछ समय पश्चात् एक दिन राजा पुनः उस तरफ वन क्रीडा के लिए गया। मुनि को देखकर, मुनि की निंदा करके ''मारो, सिर काटो'' ऐसा कहकर तलवार उठाये थे कि फिर दया से मुनि को छोडकर वापस आ गये।

एक दिन राजा ने मुनि के उपसर्ग के बारे में रानी को कहा। रानी उस घटना को सुनकर धर्मात्मा और दयालु होने के कारण उनके कर्म को धिक्कारने लगी। कुछ समयानन्तर रानी दुःखित होकर पलङ्ग पर लेट गई। जब राजा को दासी से रानी की उदासीनता के बारे में पता चला तब राजा रानी के पास जाकर बोला- आपको किसने कष्ट दिया ? आप मेरे को बताइये; इसका प्रतिकार मैं शीघ्रातिशीघ्र करुँगा। तब भी रानी राजा से कुछ नहीं बोली। एक दासी ने रानी की उदासीनता का कारण बताया कि ग्रहण किया हुआ व्रत (प्रतिज्ञा) त्याग एवं मुनि के ऊपर उपसर्गादि हैं।

राजा दासी की बात सुनकर दुःखित होकर पश्चाताप करके स्वयं की निन्दा करके रानी को सान्त्वना दी। रानी के उपदेश एवं प्रेरणानुसार राजा ने एक दिगम्बर मुनि के समीप जाकर अपना पूर्वकृत समस्त वृतान्त कह सुनाया। मुनीश्वर ने प्रायश्चित्त फलस्वरूप सम्यक्त्व धारण करना, त्याग की हुई प्रतिज्ञा धारण करना एवं सिद्धचक्र विधि विधान करने के लिए कहा। राजा ने प्रायश्चित्त स्वीकार करके आठ वर्ष में सिद्धचक्र विधान पूर्ण करके उद्यापन किया। अन्त में सन्यास धारण करके समाधि मरण करके देव हुआ। रानी भी धर्मात्मा होने के कारण उस स्वर्ग में देव हुई।

स्वर्ग से च्युत होकर राजा के जीव ने अङ्ग देश के चम्पापुरी नगरी के राजा 'अरिदमन' की रानी 'कुंदप्रभा' के गर्भ से जन्म ग्रहण किया, वह लडका बहुत सुंदर, सर्वगुण सम्पन्न एवं पुण्यात्मा था। उसका नाम श्रीपाल रखा गया। श्रीपाल के युवक होने के पश्चात् राजा श्री अरिदमन पुत्र को योग्य, गुणी, प्रजावत्सल, उदारचेता मानकर पुत्र को राज्य समर्पण कर मुनि होकर समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्ग पधारे। राजा श्रीपाल प्रजा का पुत्र के समान न्याय नीति से पालन करने लगे।

पूर्व जन्म में सातसौ वीरों सहित राजा ने मुनि महाराज की कोढी-कोढी कहकर निन्दा की थी, उसके फलस्वरूप राज्य अवस्था में अत्यन्त सुंदर, बलिष्ठ, स्वस्थ अवस्था में राजा को तथा सातसौ वीरों को गलित कुष्ठरोग हो गया, जिससे सम्पूर्ण शरीर गल-गल कर खण्डित होने लगा। कुष्ठियों के शरीर की दुर्गंध से प्रजा अत्यन्त दुःखी, बेचैन होने

लगी, प्रजा नगर छोडकर अन्य स्थानों में भागने लगी। नगर धीरे-धीरे प्रजाशून्य होने लगा। इस परिस्थिति को देखकर कुछ ज्ञानी, वृद्ध लोगों ने श्रीपाल के काका वीरदमन को नगर की परिस्थिति से अवगत कराया। श्रीपाल के काका ने प्रजाजनों के दुःख के बारे में राजा श्रीपाल को अवगत कराने के पश्चात्, दयालु, प्रजा-वत्सल श्रीपाल सातसौ कुष्ठियों सहित चम्पापुरी नगरी को त्याग करके नगर से बहुत दूर एक वन में रहने लगे। राजा श्रीपाल ने अपने काका को राज्यभार समर्पण करके नगर त्याग दिया था।

मालव देश के उज्जैयिनी नगरी के राजा पहुपपाल की एक अत्यन्त सर्वगुण सम्पन्न शीलवती, विदुषी, धर्मात्मा, सुन्दरी नवयुवती, कन्या मैनासुंदरी थी। एकदिन राजा मैनासुंदरी से पूछते हैं - ''तुम किसके भाग्य पर जीवनयापन कर रही हो ?'' मैनासुंदरी पितृभक्त होते हुए भी स्वपुरुषार्थ एवं स्वभाग्य पर विश्वास रखने वाली थी। इसलिए मैनासुंदरी बोली - ''मैं स्वोपार्जित पुण्यकर्म से जीवनयापन कर रही हूँ।'' इससे राजा ने क्रोधित होकर कन्या को कष्ट देने के लिए एक अयोग्य रोगी, दरिद्र वर के साथ विवाह करने का विचार किया। उसने शोध करके कुष्ठ रोग से पीडित श्रीपाल के साथ महान् सुंदरी, सुकुमारी मैनासुंदरी का विवाह कर दिया।

परंतु स्वपुरुषार्थ एवं भाग्य पर निर्भर रहने वाली मैनासुंदरी, कुष्ठ रोगी श्रीपाल की भारतीय सती नारी के समान पतिदेवता मानकर सेवा करने लगी। विवाहानन्तर पुनः वे उद्यान में चले गये। वहाँ पर मैनासुंदरी ने विधिपूर्वक अन्तःकरण से भक्तिभावना पूर्वक सिद्धचक्र विधानमण्डल पूजा की। जिन मंदिर में जिनभगवान् का स्वयं अभिषेक करके उस पवित्र गंधोदक को सातसौ कुष्ठियों सहित श्रीपाल के सम्पूर्ण शरीर में लगाने के लिए देने लगी। इस प्रकार आठ दिन तक सिद्धचक्र पूजा मण्डल विधान (जिस पूजा में अनन्तानन्त नित्य निरञ्जन सिद्ध परमेष्ठी भगवान् की पूजा की जाती है) करके प्रत्येक दिन कुष्ठरोगियों को गंधोदक शरीर में लगाने के लिए देती रही। आठवें दिन महाभयङ्कर गलित कुष्ठरोग पूर्ण रूप से नष्ट होकर श्रीपाल सहित सातसौ कुष्ठरोगी पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त हुए।

रोग नष्ट होने के उपरान्त, मैना सुंदरी के माता-पिता अत्यन्त आनंदित होकर मैनासुंदरी तथा श्रीपाल को अपने राजमहल में ससम्मान बुलाये। कुछ दिन ससुराल में रहकर पुरुषार्थ से धनसम्पत्ति उपार्जन करने के लिए द्वीपान्तर वाणिज्य के लिए प्रयाण किये। एक दिन श्रीपाल समुद्र तटस्थ भृगुकच्छ नामक नगर के उपवन में शयन किये हुए थे। उस समय कुछ यात्री श्रीपाल को उठाकर समुद्र तट पर ले गये। धवल सेठ नामक समुद्री व्यापारी, जो कि पाँच सौ जहाजों का मालिक था, आंधी के कारण उसके जहाज

खाडी में फँस गये थे। श्रीपाल को समस्त वृतान्त धवल सेठ ने अवगत कराया। श्रीपाल ने उसके दुःख से दुःखित होकर उनके उपकार के लिए 'णमोकार मंत्र' स्मरण करके जहाजों को गतिशील बना दिया, इससे धवल सेठ संतुष्ठ हो गया तथा श्रीपाल को साझी बनाकर अपने साथ व्यापार के लिए ले चला। हंसद्वीप में श्रीपाल का'रयणमञ्जूषा' नामक राजपुत्री के साथ विवाह हुआ। कुछ दिन वहाँ सुखपूर्वक बिताकर व्यापार के लिए रयणमञ्जूषा के साथ पुनः समुद्र यात्रा प्रारम्भ की। रास्ते में धवल सेठ रयणमतंजूषा की सुंदरता से मुग्ध होकर उसके साथ संभोग करने के लिए षडयंत्र करके श्रीपाल को समुद्र में गिरा दिया। पाठक वर्ग को मालूम है कि पूर्व भव में श्रीपाल ने एक आत्मसाधक, शांतिप्रिय, दिगम्बर मुनि महाराज को द्वेषवशतः समुद्र में डाल दिया था। उस कुभाग्य (कर्म) के फलस्वरूप वर्तमान भव में श्रीपाल को भी गिरना पडा। इंगलिश में एक नीति वाक्य है - As you sow so you reap अर्थात् 'जैसा बोओगे वैसा पाओगे।'

श्रीपाल को समुद्र में गिराने के बाद धवल सेठ ने सती रयणमंजूषा के साथ बलात्कार करने के लिए प्रयत्न किया। तब शीघ्र जल देवता प्रकट होकर सेठ को बांधकर गदा से पीटा एवं भर्त्सना (तिरस्कार) किया। जहाज के सब लोग सेठ की दुरावस्था को देखते रहे परंतु दंड देने वाले को कोई भी देख नहीं पाया। सब लोगों ने भय से सती से सेठ एवं अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की, तब सती रयणमंजूषा ने भगवान् को स्मरण करके सेठ को क्षमा करने के लिए प्रार्थना की। जल देवता ने कहा- हे सती ! मैं आपके सतीत्व से प्रभावित होकर यह सर्व कृत किया है। आप डरो मत, चिंता त्याग करीये। धर्मात्मा को कभी भी, कोई भी कष्ट नहीं दे सकता। धर्म, पुण्य कर्म एवं दैवी शक्ति उसकी रक्षा करती है। पापी कभी भी, कही भी सुखी नहीं रहता है, उसकी रक्षा कोई नहीं करता है और उसकी सुरक्षा हो भी नहीं सकती। कुछ ही दिनों में आपके पति श्रीपाल मिलेंगे एवं वे महाराजा बनेंगे और आप रानी बनने वाली हैं। जब तक हम हैं आपको कोई कष्ट नहीं दे सकता है। ऐसा कहकर जलदेवता अन्तर्ध्यान हो गये। रयणमंजूषा अपने सतीत्व की रक्षा से एवं पति की खबर सुनकर अत्यंत आनंदित हुई। सेठ ने अपनी भूल सवीकार करके क्षमायाचना की एवं रयणमंजूषा ने सेठ को पिता समान मानकर क्षमा कर दिया।

श्रीपाल ने समुद्र में गिरने के बाद सेठ के कपट व्यवहार को जान लिया तो भी श्रीपाल सोचता है ''सेठ केवल गौण निमित्त है, परंतु मैंने पूर्व जन्म में जो पाप किया था उसका यह फल मिला है।'' इसी प्रकार विचार कर मन में समता एवं धैर्य को धारण कर ''णमोकार मंत्र'' स्मरण करके समुद्र पार करने का प्रयत्न किया। एक पाटा मिलने से उसका अवलम्बन लेकर समुद्र पार करके कुंकुम द्वीप में पहुँचा। वहाँ का राजा सतराज

था। उसकी रानी वनमाला थी और कन्या गुणमाला थी। राजा ने अवधि ज्ञान सम्पन्न मुनि महाराज की भविष्यवाणी के अनुसार श्रीपाल के साथ अपनी प्रिय पुत्री का विवाह कर दिया।

धवल सेठ व्यापार करते-करते एक दिन व्यापार के लिए कुंकुम द्वीप के राज दरबार में जा पहुँचा। राजदरबार में श्रीपाल को राजठाट में बैठा देखकर पूर्व स्वदुष्कृत स्मरण करके अत्यन्त भयभीत हो गया। श्रीपाल को जान से मारने के लिए एक षड्यंत्र किया। वह राजदरबार से समुद्र तट पर गये जहाँ अपना जहाज था। वहाँ से भाँडों को समस्त वृतान्त कहकर षड्यंत्र रचकर राजदरबार में नृत्य करने के लिए भेज दिया। उन भांड लोगों ने नृत्य करके राजा को संतुष्ट कर दिया। श्रीपाल जब भांडों को ताम्बूल देने लगे तब सब भांड उन्हें घेरकर कोई अपना बेटा, कोई अपना भाई, कोई अपना स्वामी, कोई अपना देवर कहने लगे। राजा द्वारा इसका कारण पूछने पर भांडों ने कहा- हम एक जहाज में आ रहे थे, समुद्र में तूफान के कारण जहाज टूट गया। हम लोग येन-केन प्रकारेण मिल गये, किंतु दो पुत्र नहीं मिले थे। उनमें से एक छोटा पुत्र आपके यहाँ मिल गया है।

राजा द्वारा श्रीपाल को पूछने पर विचार किया - मेरा कोई पूर्वकृत् पाप का उदय है। मैं विदेशी अकेला व्यक्ति हूँ। मेरी बात को सिद्ध करने के लिए कोई साक्षी नहीं है। यदि मैं सत्य बात भी कहूँगा तो भी कोई नहीं मानेगा। पर मेरा पूर्ण विश्वास है - ''सत्यमेव जयते'' सत्य की विजय होती है। उसी प्रकार विचार कर राजा से कहा - इनकी बात सत्य है अर्थात् मैं भांड हूँ। राजा ने सुनकर क्रोधित होकर शूली दण्ड देने के लिए आज्ञा दे दी।

पाठक वर्ग ने कथा के प्रारम्भ में पढा था कि पूर्वभव में श्रीपाल ने अहिंसा के अवतार निर्दोष दिगम्बर साधू को भांड-भांड कहकर अपमान किया था। इसलिए उस पूर्वोपार्जित पापकर्म के प्रतिफल से राजा श्रीपाल को भांड लोगों ने भरी सभा में भांड कहकर सम्बोधित किया। नीतिकारों ने कहा है - ''जैसी करनी वैसी भरनी'' जैसे गोल गुम्बज में एक व्यक्ति गाली देता है तो वह गाली प्रतिध्वनित होकर उसके पास ही आती है। यदि कोई भद्र शब्दों का उच्चारण करता है तो वह शब्द प्रतिध्वनित होकर पुनः अपने पास आ जाता है। इसी प्रकार जीव जो सूक्ष्म-स्थूल, शुभ-अशुभ कार्य करता है उसका प्रतिफल आज नहीं तो कल, निश्चित रूप से प्राप्त होगा।

श्रीपाल को चाण्डाल शूली दण्ड देने के लिए जा रहे थे, जाते समय विचार कर रहे थे - मैं चाहूँ तो सबको अकेला मार सकता हूँ। परंतु इससे मेरी सज्जनता प्रगट नहीं हो सकती, जो पूर्वकृत कर्म उदय में आया है उसको समता भाव से सहन करना चाहिए।

समता भाव रखने से मानसिक शांति मिलती है तथा पूर्वकृत नष्ट होने से सुख मिलता है। पहले ही आप लोगों ने इस कथा में पढा होगा कि पूर्वभव में श्रीपाल ने एक शांत निर्दोष दिगम्बर साधु को मारने के लिए तलवार उठायी थी। इसलिए वर्तमान में उसको शूली दण्ड देने की सजा मिली।

शूली की खबर सुनकर गुणमाला दुःखित होकर रोते-रोते दौडकर श्रीपाल के पास पहुँच गयी। गुणमाला स्वामी से उनका यथार्थ परिचय चाहने पर श्रीपाल बोले - दुःखी मत हो और समता धारण करो, समुद्र के किनारे जाकर रयणमंजूषा से मेरा यथार्थ परिचय पूछो, जिसके बारे में मैंने अनेक बार कहा है। गुणमाला ''रयणमंजूषा, रयणमंजूषा'' पुकारती-पुकारती दुःख निराशा के साथ-साथ एक क्षीण आशारूपी प्रकाश लेकर समुद्र के तट पर रयणमंजूषा से जाकर मिली। गुणमाला श्रीपाल के बारे में पूछने पर रयणमंजूषा ने यथार्थ परक समस्त वृतान्त कह सुनाया। रयणमंजूषा धीर व मधुर भाषा में बोली - हे बहिन ! शोक मत कर, जिसके बारे में आप पूछ रही हैं वह सामान्य पुरुष नहीं है। चरमशरीरी, तद्भव मोक्षगामी, उत्तम क्षत्रियवंशी राजकुमार है, उनको कोई मार नहीं सकता है। वे महान् अद्वितीय शक्तिशाली कोटिभट्ट श्रीपाल हैं। कोटिभट्ट का अर्थ - जो अकेला व्यक्ति एक करोड व्यक्ति से युद्ध कर जीत सकता है इतनी जिसमें शक्ति होती है उसे कोटिभट्ट कहते हैं। 'सत्यमेव जयते' - चलो मैं दरबार में जाकर समस्त वृतान्त सुनाती हूँ। रयणमंजूषा ने राजदरबार में जाकर श्रीपाल का समस्त वृतान्त सुनाया तथा सुनने के बाद राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीपाल के पास जाकर अत्यन्त नम्र भाव से क्षमा माँगकर घर लौटने के लिए कहा। राजा ने जब क्षमा प्रार्थना की तब श्रीपाल ने कहा- हे धर्मतात् ! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह निश्चित पूर्वोपार्जित पापकर्म का फल है। परंतु एक विशेष बात आपको कहता हूँ सो सुनिये ! आप राजा हो, न्याय करना आपका परम कर्तव्य है, इसलिए आपको बिना विचारे अविवेक से कोई भी काम करना योग्य नहीं है। राजा एकदम लज्जित होकर सम्मानपूर्वक हाथी पर बैठाकर श्रीपाल को राजमहल में ले गया। पुण्य कर्म एवं सतीत्व के कारण रयणमंजूषा, गुणमाला एवं श्रीपाल का पुनः मिलन हुआ। दोनों रानी एवं श्रीपाल सुखपूर्वक सतराज के महल में सुख से वास करने लगे।

पाठक वृन्द ! पहले आप लोग इस कथा के प्रारम्भ में पढे थे कि, श्रीपाल ने पूर्वभव में दयालु दिगम्बर मुनीश्वर को मारने के लिए तलवार उठायी थी परंतु उनके परिणामों में परिवर्तन हुआ। वे मुनिराज को निर्दोष जानकर दया से तलवार पीछे खींच ली। मुनिराज को नहीं मारने के कारण शूली दण्ड मिला था तो भी शूली दण्ड नहीं हुआ।

श्रीपाल जैसे निर्दोष व्यक्ति को धवल सेठ ने जो विभिन्न प्रकार कष्ट दिया था

उसके फलस्वरूप राजा ने धवल सेठ को दण्ड देने के लिए उसको लाने के लिए दूत भेजे। दूतों ने मारपीट करके एवं घसीट-घसीट कर धवल सेठ को राजसभा में उपस्थित किया। क्रोधित होकर श्रीपाल से सेठ को किस प्रकार दण्ड का दिया जाये, उसके बारे में पूछा। श्रीपाल कर्म की विचित्रता जानकर नम्र भाव से राजा से बोला - राजन् ! धवल सेठ मेरे धर्म-पिता हैं। वे मुझे कष्ट देते रहे परंतु उस अनेक कष्ट से ही मुझे इष्ट सिद्धि हुई है। उनके कारण गुणमाला के साथ मेरा विवाह हुआ है, इसलिए वे उपकारी हैं, इसलिए आप दया करके उन्हें छोड दीजिए। राजा ने श्रीपाल के वचनानुसार सेठ को छोड दिया।

पाप का घडा फूटा -

धवल सेठ अपने द्वारा किये हुए श्रीपाल के प्रति कुकृत्य का हृदय पटल में प्रतिबिम्ब अङ्कित देखने लगा। उसके साथ-साथ श्रीपाल के द्वारा किया गया उपकार और श्रीपाल की उदार प्रवृत्ति के कारण उसके मन में संघर्षमय द्वन्द्व प्रवृत्ति जागृत हो गयी। मन ही मन में श्रीपाल के प्रति किया गया कृतघ्नता के व्यवहार ने उसके मन को अत्यन्त दोलायमान किया। मन ही मन श्रीपाल के प्रति कृतज्ञता स्वीकार की। घोर आत्मग्लानि, मानसिक द्वन्द्व, विक्षोभ, पाप प्रवृत्ति से शोक, दुःख, अनुताप से संतप्त होकर एक दीर्घ श्वांस खींची जिससे उसका हृदय/पेट फटकर मरण को प्राप्त हुआ एवं नर्क गया।

धवल सेठ को कोई प्रकार शारीरिक, मानसिक दण्ड नहीं मिला। श्रीपाल के कारण उसको क्षमा किया गया परंतु दुष्प्रवृत्ति, कुटिलता, कामासक्ति, कृतघ्न्ता आदि अशुभ भावनाओं के कारण उसके मानसिक, स्नायविक, भावात्मक तनाव आदि पैदा हुए, उस तनाव ने ही उसे मृत्युदण्ड दिया।

श्रीपाल का महान् उदार भाव -

श्रीपाल सेठ की मरण खबर सुनकर सेठानी को सान्त्वना देने के लिए समुद्र के किनारे जा पहुँचा। सेठानी को नम्र भाव से बोले - हे माँ ! आप मेरी धर्म माता हैं। आप चिंता मत कीजिए, आपका लडका मैं हूँ, आपकी सम्पूर्ण प्रकार से सेवा करने के लिए तन-मन-धन से तैयार हूँ। आप चाहती हो तो आप खुशी से यहाँ रह सकती हो, स्वदेश वापस जाना है तो सम्पूर्ण व्यवस्था मैं कर दूँगा। सेठानी बोली- बेटा मुझे देश जाना है, तो श्रीपाल ने देश जाने की समस्त व्यवस्था कर दी।

इसी प्रकार श्रीपाल विदेश में पुरुषार्थ एवं धर्म के माध्यम से अनेक सम्पत्ति, विभूति, कीर्ति एवं अनेक सुंदर स्त्रियों को प्राप्त करके वापिस स्वदेश आया। स्वदेश में राज्य सिंहासन पर आरूढ होकर प्रजा को पुत्र तुल्य पालन करके अनेक वर्ष सुखपूर्वक जीवनयापन किया। एक बार महल के ऊपर खडे होकर दिक् अवलोकन कर रहे थे तब

विद्युत् चमककर विलय हो गयी। श्रीपाल इस घटना को देखकर विचार करने लगे- संसार शरीर-भोग विद्युत् के समान क्षणभंगुर है। इस प्रकार विचार करते-करते वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। जिससे पुत्र धनपाल को राज्य सिंहासन पर आरूढ कर सात सौ वीरों के साथ समस्त अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रह का त्यागकर यथाजात बालकवत् दिगम्बर वेष को धारण कर निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ले ली। कठोर आत्मसाधना के माध्यम से केवलज्ञान को प्राप्त करके नित्य निरंजन पद को प्राप्त किया। मैनासुंदरी तथा अन्य रानियों ने भी आर्यिका दीक्षा धारण कर आत्मसाधना की, जिससे मैनासुंदरी स्त्रीलिंग को छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। अन्य-अन्य रानियाँ भी स्व-योग्य तपश्चरण करके स्वर्ग में देव हुईं।

आयुर्वेद के अनुसार कुष्ठ रोग के कारण -

व्यवा चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा।
विप्रन्गुरुन्धर्षयता पापं कर्म च कुर्वताम्॥ 5 पृ. 252
पापाभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैः प्रेरिता मलाः।
वातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसामम्बु च॥ 6
दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः।
त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत्॥

भोजन के उपरान्त जब तक भोजन पाचन नहीं होता है, उसके मध्यवर्ती समय में भोग (मैथुन) करने वाला, दिवा निद्रा लेने वाला, ब्रह्मा अर्थात् आत्मा को जानने वाले को ब्राह्मण धर्मात्मा कहते हैं; उनकी निन्दा करने वाला, देव, गुरु आदि पूज्य पुरुषों का अपमान करने वाला, पाप करने वाले मनुष्यों को पूर्वोपार्जित पाप कर्म की प्रेरणा से वातादि तीन दोष, त्वचा, रक्त, मांस जलादि धातु दूषित होते हैं। शरीर में यह सप्त कुष्ठ उत्पन्न करते हैं। ये द्रव्य दूषित होने से त्वचा विवर्ण होकर कुष्ठरोग उत्पन्न होता है।

-: सेवामृतम् :-

''अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानी ज्ञानं समाश्रयेत्'' अर्थात् अज्ञानी की सेवा से अज्ञान एवं ज्ञानी की सेवा से ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत रोगी की सेवा से रोग नहीं होता है परंतु ''निर्व्याधिर्भेषजात्'' के अनुसार निरोगता मिलती है।

परिच्छेद - 6

सच्चरित्र से आरोग्य

सम्पूर्ण स्वास्थ्य के मूलमंत्र -

सद्विचार, सदाचार, सदोच्चार, सदाहार-विहार ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य के मूल मंत्र हैं, ऐसा स्वास्थ्य विज्ञान के मर्मज्ञों ने कहा है। यथा -

तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात्समनस्कमिन्द्रिय विकृतिमापद्यमानं यथास्वं बुद्धयुवधाताय सम्पद्यते, समयोगात्पुनः प्रकृतिमापद्यमानं यथास्वं बुद्धिमाप्याययाति॥ 15

चरक सहिंता पृ. 68

ये मनोऽधिष्ठित इंद्रियाँ अपने-अपने विषय के अतियोग, अयोग तथा मिथ्यायोग से विकृत होती हुई अपनी बुद्धि (चक्षुर्बुद्धि आदि) का संहार करती हैं और प्रकृत्यावस्था में रहती हुई अपनी-अपनी बुद्धि (ज्ञान) का प्रोणन (सन्तर्पण) करती है। चक्षु आदि इंद्रियों से रूप आदि विषयों का अतिदर्शन अतियोग कहलाता है। हीन मात्रा में दर्शन अथवा सर्वथा न देखना अयोग और अविप्रतिभा वाले या विकृत रूपादि का देखना मिथ्यायोग कहलाता है।

मनसस्तु चिन्त्यमर्थः, तत्र मनसो बुद्धेश्च त एव समनातिहीनमिथ्यायोगाः प्रकृतिविकृतिहेतवो भवन्ति॥ 16

मन का विषय है चिन्त्य (जिसकी चिंता की जावे) अर्थात् जिस विषय के ग्रहण के लिए चक्षु आदि इंद्रियों की अपेक्षा नहीं होती, पर ग्रहण होता है उसे ही चिन्त्य कहते हैं। सुख दुःख आदि गुण भी इसी के अन्तर्गत जानने चाहियें अर्थात् पाँचो इंद्रियों की बुद्धि (चक्षुर्बुद्धि) से भिन्न बुद्धि को यहाँ चिंता से कहा है। चिंता का विषय ही चिन्त्व कहलाता है। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, स्मृति आदि विषय चिंता किये जाने के कारण मन का विषय कहलाते हैं। परंतु इन विषयों का ग्रहण करने वाला आत्मा ही है। इनमें चिन्त्य विषयों का समयोग, अतियोग, हीनयोग तथा मिथ्यायोग, मन एवं मनोबुद्धि की प्रकृति और विकृति के कारण होते हैं अर्थात् समयोग के प्रकृति और अतियोग आदि के द्वारा विकृति होती है। इसी प्रकार सुख के समयोग से प्रकृति और मात्राधिक सुख (खुशी) से मानव विकार पैदा हो जाते हैं। अत्यन्त प्रसन्नता से भी मनुष्य पागल हो जाते हैं और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है।

तत्रेन्द्रियाणां समनस्कानातनुपतप्तानामनुपतापाय प्रकृतिभावे

'प्रयतितव्यमेभिर्हेतुभिः; तद्यथा - सत्म्येन्द्रियार्थसयोगेन, बुद्ध्या सम्यगवेक्ष्यावेक्ष्य कर्मणां सम्यकप्रतिपादनेन, देशकालात्मगुणविपरीतोपसेवनेन चेति। तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्टेयम्। तद्ध्यनुतिष्ठन् युगपत्सम्पादमत्यर्थंद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयं चेति। 17

अतएव मन तथा इंद्रियों जो-जो कि अभी प्रकृति ही है और जिनके अन्दर कोई विकार पैदा नहीं हुआ-विकार से बचाये रखने के लिए निम्न उपायों द्वारा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

जैसे इंद्रिय और उनके विषयों के समयोग से, बुद्धि द्वारा अच्छी प्रकार विवेचना करके कर्मों को सम्यक्तया करने से तथा देशकाल, आत्मा के गुणों से विपरीत गुण वाले आहार आदि के सेवन से आत्म शब्द से यहाँ पर मन और शरीर का ग्रहण किया जाना है अर्थात् रज और तम तथा वात, पित्त, कफ का यहाँ ग्रहण है। विपरीत गुणों के सेवन का प्रयोजन साम्यावस्था में रखना है अतएव हेमन्तादि ऋतुओं की चर्या में- ''वायुःशीतःशीते प्रकुप्यति। तस्मत्तुषारसमये स्निग्धाम्लवणान् रसान्॥'' इत्यादि कहा है अर्थात् रुक्षादि गुण विशिष्ट वातादि प्रकोप को न होने के लिए तद्विपरीत स्निग्ध द्रव्यों का उपयोग हितकर है। देश शब्द से भूमि आतुर(रोगी) दोनों का ग्रहण होता है।

इसलिए अपने हित की आकाँक्षा रखते हुए प्रत्येक मनुष्य को स्मृतिपूर्वक (शुभ आचरण, श्रेष्ठों का आचरण) का अनुष्ठान करना चाहिए। स्मृतिपूर्वक इसलिए कहा है कि हमने ऐसा आचरण किया था और उसका अच्छा परिणाम रहा था। अतः जब कभी गिरावट होने लगे तब उसके दुष्परिणाम का तथा उत्तम आचरण के सुपरिणाम का स्मरण करने से हम गिरावट से बच सकते हैं। अतएव अन्यत्र भी कहा है - ''नित्य सन्निहितस्मृतिः॥''

सद्वृत्त के अनुष्ठान से युगपत् (एक साथ) दो लाभ होते हैं - 1) आरोग्य तथा 2) इंद्रियों पर विजय।

तत्सद् वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः। तद्यथ-देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यनर्चयेत्, अग्निमुपाचरेत्, औषधिः प्रशस्ता धारयेत्, द्वौ कालाबुपस्पृशेत् मलायनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वैमल्यमाद्ध्यात्, नित्यमनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात्॥ 18

''हे अग्निवेश ! उस सम्पूर्ण सद्वृत्त का मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ'' भगवान् आत्रेय ने कहा। देव ! (विद्वान् पुरुष), गौ, ब्राह्मण, गुरुवृद्ध, सिद्ध (तपस्वी) और आचार्य; इनकी पूजा करनी चाहिए। अग्नि की सेवा अर्थात् होम करें। उत्तमोत्तम औषधियों को धारण करें। दोनों समय स्नान तथा संध्या करें। गुदा आदि मलमार्ग तथा

पावों को सदा स्वच्छ रखना चाहिए। कम से कम एक पक्ष में तीन बार दाढी, मूँछ और सिर के बाल कटवाने चाहिए। प्रतिदिन स्वच्छ तथा फटे हुए न हो ऐसे वस्त्र ही पहिनें। प्रसन्न मन रहना चाहिए। सुगन्धि धारण करें।

साधुवेशः, प्रसाधितकेशो, मूर्ध-श्रोत्रघ्राणपादतैलनि, धूमपः, पूर्वाभिभाषी, सुमुखो, दुर्गेष्वभ्युपपत्ता, होता, यष्टा, दाता, चतुष्पथानां नमस्कर्ता, बलीनामुपहर्त्ता, अतिथीनापूजकः, पितृभ्यः पिण्डदः काले हितमितमधुरार्थवादी, वश्यात्मा, धर्मात्मा, हेतावीर्षुः, कले नेर्षेः, निश्चिंतो, निर्भीको, धीमान्, ह्रीमान्, महोत्साहो, दक्षः, क्षमावान्, धार्मिकः, आस्तिको विनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्याणामुपासिता, छत्री दण्डी मोली सोपानत्को युग्मात्रदृग्विचरेत्, मङ्गलाचारशीलः, कुचेलास्थिकण्टकामेध्यकेशतुषोत्ककपालस्नानबलिभूमिनां परिहर्ता, प्राक् श्रमाद्वयायामवजी स्यात्, सर्वप्राणिषुबन्धुभूतः स्यात्, क्रुद्धानामनुनेता, भीतानामाश्वासयिता, दीनानामभ्युपपत्ता, सत्यसंघः, सामप्रधानः, परपुरुषवचनसहिष्णु, अमर्षध्नः, प्रशमगुणदर्शी, रागद्वेषहेतुनां हन्ता॥ 19

वेश भी साधुजनों के समान हो, उत्तम वेश हो, बालों को कंघी आदि के द्वारा ठीक रखना चाहिए। सिर, कान, नाक तथा पाव पर प्रतिदिन तेल लगावे। दिन चर्या में बताये गये धूप का पान करना उत्तम है। परस्पर मिलने पर दूसरे के बोलने से पहले सत्कार युक्त वचनों को बोलनेवाला होना चाहिए। प्रसन्न मुख होवें। कठिनाई का सामना आने पर धृतिशील अथवा दरीद्र एवं अनाथ आदमियों का रक्षक हो। होम करने वाला अथवा दान करने वाला होना चाहिए। यज्ञ करने वाला, दान करने वाला, चतुष्पथ अर्थात् चौराहों पर नमस्कार करने वाला, कुत्ते आदि तथा रोगी, चांडाल आदि के लिए बलि देने वाला (बलिवैश्वदैव यज्ञ करने वाला), अतिथियों का पूजक (अतिथि यज्ञ), पितरों को पिण्ड देने वाला (अन्नादि द्वारा यथायोग्य सत्कार करने वाला), समय पर और हितकर वचन कहने वाला, मितभाषी एवं मीठा बोलने वाला, जिसने अपनी इंद्रियों को वश में किया हुआ है, धर्मात्मा, श्रेष्ठ कर्म करने में प्रयत्नशील परंतु उसके फल की इच्छा न रखने वाला (कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन। माकर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥) अथवा कार्य में इच्छा रखने वाला परंतु फल में इच्छा न करने वाला अर्थात् यह मनुष्य जिन कर्मों के करने से धनवान् या विद्वान् हुआ है वही कर्म मैं भी करुँ जिससे धनवान् या विद्वान् हो जाऊँ। परंतु यह इच्छा न करें कि अमुक मनुष्य का धन मैं ले लूं। इस प्रकार की इच्छा न करें। निश्चित अर्थात् विचार का पक्का, भय रहित, लज्जा युक्त, बुद्धिमान, बडे उत्साह वाला, चतुर, क्षमाशील,

धार्मिक, आस्तिक, विनय, बुद्धि, विद्या, कुल तथा वय (उमर तथा आयु) में जो वृद्ध है उनका तथा सिद्ध आचार्यों का उपासक (उनका सत्संग करने वाला), छत्र धारण करने वाला, जूता पहिनने वाला तथा युग (चार हाथ) मात्र दूरी तक अपनी दृष्टि रखने वाला होना चाहिए। मङ्गल आचारों में तत्पर, जीर्ण वस्त्र एवं खराब हड्डी, काँटे, अपवित्र, जहाँ केश पडे हो, जहाँ तुशों का ढेर लगा हो, राख, कपाल (टूटे हुए मिट्टी आदि के बर्तन) आदि पडे हों ऐसी भूमि पर न जाएँ, स्नान भूमि में न जाएँ अर्थात् ऐसे स्थलों पर ठोकरे खाने तथा फिसलने आदि का डर रहता है। थकावट से पहले ही व्यायाम (कसरत) को बंद कर देना चाहिए। सम्पूर्ण प्राणियों को अपना बंधु समझे। क्रुद्ध पुरुषों को अनुनय-विनय द्वारा समझाने वाला, डरे हुए को आश्वासन देने वाला, दोनों का सहारा, सत्य प्रतिज्ञ, शांतियुक्त, दूसरों के कठोर वचनों को सहने वाला, असहिष्णुता का नाशक अथवा क्रोध का नाशक, शांति को गुण रूप से देखने वाला तथा राग, द्वेष आदि का नाशक होना चाहिए।

नानृतं ब्रूयात्, नान्यस्वमादद्यात्, नान्यस्त्रियमभिलपेन्नान्यश्रियं, न वैरं रोचयेत्, न कुर्यात्पापं न पापेऽपिपापी स्यात्, नान्यदोषान् ब्रूयात्, नान्यरहस्यमागमयेत्, नाधार्मिकैर्न नरेन्द्रद्विष्टैः सहासीत नोन्मत्तेर्नपतितैर्न भ्रूणहन्तृभिर्न क्षुद्रैर्न दुष्टैः न दुष्टयानान्यारोहेत्, न जानुसमं कठिनमासनमध्यासीत् नानास्तीर्णमनुपहितमविशालसमं वा शयनं प्रपद्येत, गिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत्, न द्रुममारोहेत्, न जलोग्रवेगमवगाहेत्, कूलच्छायां नोपासीत्, नाग्न्युत्पातमभितश्चरेत्, नोच्चैर्हसेत्, न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत्, नासंदृतमुखो जृम्भां क्षवथुं हस्यं वा प्रवतयेत्, न नासिकां कुष्णीयात्, न दन्तान् विघट्टयेत्, न नखान वादयेत्, नास्थीन्यमिहन्यात्, न भूमि विलिखेत्, न छिंद्यातृण, न लोष्ट्रमृद्नीयात्, न विगुणमङ्गश्चेष्टेत्, ज्योतीष्यनिष्टममेध्यमशस्तं च नाभिवीक्षेत्, न हुँ कुर्याच्छ्वं न चैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्त-च्छायामाक्रामेन्, न क्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वर चतुष्पथोपवनश्मशानाघातनान्य सेवेत् नैकः शून्यगृह न चाटवमनीप्रविशेन्, न पापवृत्तान् स्त्रीमित्रभृत्यान् भजेत्, नोत्तमैर्विरुध्येत्, नाव रानुपासीत् जिह्मं रोचयेत्, नानायंमाश्रयेत् न भयमुत्पादयेत्, न साहसातिस्वप्न-प्रजागरस्नावपानाशनान्यासेवेत्, नार्ध्वजानुश्चिरं तिष्टेत्, न व्यालानुपसर्पेत्र दष्ट्रिणो न विपाणिनः, पुरोवातातपावश्यायातिप्रवातान् जह्यात्, कलिं नारभेत्, नासुनिभृतोऽग्निम् उपासीत्, नोच्छिष्टो नाधःकृत्वा प्रतापयेत्, नाविगतक्लमो नानाप्लुतवदनो न नग्न उपस्पृशेत्, न स्नानाशाट्या स्पृशेदुत्तमाङ्गं, न केशाग्राण्यभिहन्यात्, नोपस्पृश्य ते एव वाससी विभृयात्, नास्पृष्टवा रत्नाज्यपूज्यमङ्गयसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत् न पूज्यमङ्गलान्यपसव्य गच्छेन्नेतराण्यनुदक्षिणम्॥ 20

झूठ न बोले, दूसरे के धन का अपहरण न करें, पर स्त्री पर मन से भी कुदृष्टि न करें, दूसरे की लक्ष्मी को न चाहे, बैर न करें, पाप न करें, पाप के उपस्थित होने पर भी पापी न हो अथवा पापी के साथ भी पाप न करें - अपकारक के साथ भी अपकार न करें। दूसरे के दोषों को न कहे, दूसरों की निंदा न करें, दूसरे के रहस्यों (गुप्त बातों) को न खोले, अधार्मिक तथा राग-द्वेषी लोगों के साथ न बैठे, इसी प्रकार उन्मत्त (पागल), पतित (धर्मभ्रष्ट), भ्रूणहंता (गर्भपात करने वाले), नीच तथा दुष्ट पुरुषों के साथ न रहें, दुष्ट सवारियों पर न बैठे। कठिन जानु समान ऊँचे-ऊँचे आसनों (चौकी आदि) पर न बैठे और न ही जिस शय्या पर बिस्तर आदि न बिछा हो, सिरहाना न लगा हो, छोटी हो तथा ऊँची-नीची हो ऐसी शय्या पर न सोवे, पहाडों की उच्च चोटियों पर भी भ्रमण न करें, वृक्ष पर न चढे, न उग्र वेग वाले जल में स्नान करें। न नदियों के किनारों की छाया में अथवा पास बैठे। कहीं आग के उत्पात होने पर उसके चारों ओर न घूमे। ऊँचा नहीं हंसना चाहिए। शब्दयुक्त श्वांस को मुंह से न छोडे (इससे दूसरे पर थूक पडने का डर होता है) अथवा शब्द युक्त अपानवायु को न छोडे अर्थात् अपानवायु को छोडते समय ऐसा प्रयत्न करें जिससे शब्द न हो। जम्भाई, छींक तथा हंसने के समय मुख को हाथ द्वारा ढक लेना चाहिए। नाक को न कुरेदें, न उँगली मारें, दाँतों को बजाए नहीं अथवा दाँतों को भी न कुरेदें, नखों को न बजाये, हड्डियों को परस्पर न टकराये-संघर्ष न करें, भूमि पर पैर आदि द्वारा लेखन न करें, तिनकों को न तोडे, मिट्टी के ढेलों को न तोडें, अपने अङ्गों द्वारा विकृत चेष्टाएँ न करें। अत्यंत चमक वाली ज्योतियों (सूर्यादि) को तथा अनिष्ट, अपवित्र एवं अप्रशस्त वस्तुओं को न देखे। शव अर्थात् मुर्दे को देखकर घृणा सूचक हुँकार न करें। चैत्य (ग्राम अथवा नगर का प्रधान वृक्ष), ध्वज (झंडा), गुरु तथा अन्य पूज्य एवं अप्रशस्तों की छाया को न लांघें। रात्रि समय अमर सदन (देवगृह, मंदिरादि), चैत्य चत्वर (प्रांगण, खुली जगह), चतुष्पथ (चौराहा), उपवन (बाग-बगीचा), श्मशान तथा आगातान (वधस्थान) में निवास नहीं करना चाहिए। अकेला ही निर्जन एवं अत्याधिक काल में खाली पडे मकान में, जंगल में न जावें। पाप का आचरण करने वाली स्त्री, मित्र तथा नौकरों के साथ न रहे। श्रेष्ठ जनों से विरोध न करें और न ही नीचों के पास जावे। कुटिलों (छली) के साथ न रहे। अनार्य (दुष्ट) का आश्रय (सहारा) न ले अर्थात् इनके साथ न रहे। किसी को डरावे नहीं और स्वयं भी न डरे। साहस (अपनी सामर्थ्य से अधिक बैठकर किया गया शारीरिक श्रम), अत्याधिक जागना, अत्याधिक स्नान, अत्याधिक पान (पानी आदि का पीना) तथा अत्याधिक भोजन न करें। जानु (गोडों) को ऊँचा उठाकर अर्थात् अकडू आसन से

देर तक न बैठे, सर्प, व्याघ्र, चीता आदि के दुष्ट पशु तथा गौ, बैल, भैस आदि के विषाणी (जिनके सिंग हो) उन पशुओं के समीप न जावे। पुरोवात (पूर्व की वायु अथवा ठीक सामने से आने वाली वायु), धूप, अवश्याय, ओस, अतिप्रवात (आंधि), इनका सेवन न करें। कलह न करें। एकाग्रचित्त हुए बिना होम न करें। उच्छिष्ट (जिनके शरीर पर झूठन लगी हो) लगा तथा अग्नि को नीचे रखकर अपने को न सेकें। जब तक थकावट दूर न हो जाय तब तक स्नान न करें, सिर को गीला किए बिना भी स्नान न करें। सर्वथा नग्न होकर भी स्नान न करें, स्नान की धोती (जो नीचे भाग में बाँधी गयी हो) अथवा कपडे से सिर को स्पर्श न करें। केशों के अग्रभाग को झटकाये नहीं। स्नान करके स्नान से पूर्व धारण किये हुए वस्त्र न पहिने अथवा जिन वस्त्रों से स्नान किया है उन्हें ही धो निचोडकर पुनः गीले ही न पहिने। रत्न, धृत, पूज्य, अन्य मङ्गलकारी द्रव्य एवं पुष्पादि का स्पर्श करने के बिना घर से बाहर न निकले। पूज्य एवं मङ्गलकर पदार्थों को वाम पार्श्व की ओर, मङ्गलकारी को दक्षिण पार्श्व की ओर करके न जायें।

नारत्नपाणिर्नास्नातो नोपहतवासा नाजपित्वा नाहुत्वा देवताभ्यो नानिरूप्य पितृभ्यो नादत्त्वा गुरुभ्यो नातिथिभ्यो नोपाश्रितेभ्यो नापुण्यगन्धो नामली नाप्रक्षालितपाणि-पादवदनो नाशुद्धमुखो नोदङ्मुखो न विमना नाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधिपरिचरो न पात्रीप्वमेध्यासु नादेश नाकाले नाकीर्णे न दत्त्वाऽग्रमग्नये नाप्रोक्षित प्रोक्षणोदकैर्न मन्त्रैरनभिमन्त्रितं कुत्सयन् न कुन्सितं न प्रतिकूलोपहितमन्नमाददीत, न पर्युषितमन्यत्र शुष्कशाकफल भक्ष्येभ्यः, नाशेषभुक्स्यादन्यत्र दधिमधुलवणसक्तुसर्पिंभ्यः न नक्तं दधि भुञ्जीत, न सक्तूनेकानश्नीयात् न निशि न भुक्त्वा ना बहून् द्विर्नोदकान्तरितान्, न छित्त्वा द्विजैर्भक्षषत्॥ 21

हाथ में रत्नधारण के बिना, स्नान बिना, फटे वस्त्र पहने हुए, गायत्री आदि मंत्रों के जप के बिना (संध्या के बिना), देवताओं के लिए होम के बिना, माता-पिता आदि को भोजन कराये बिना, गुरु, अतिथि तथा आश्रितों (नौकर चाकर आदि) को दिये बिना, पुण्य, शुभ, गंधानुलेपन के बिना, माला धाारण के बिना, हाथ, पांव और मुँह धोये बिना, मुख शोधन के बिना, उत्तर मुख करके दूसरी ओर मन लगाकर अथवा खिन्न मन से अभक्त (जो नौकर स्वामी से प्रीति न रखता हो), अशिष्ट (नीच, चांडालादि), अशुचि (अपवित्र) तथा क्षुधित (भूखे) नौकरों से लाया पकाया एवं बरता (जला) हुआ, अपवित्र पात्रों में, अप्रशस्त जगह पर, अकाल में, जहाँ बहुत आदमी हो या संकीर्ण जगह पर या जहाँ बहुत सी वस्तुयें बिखरी पडी होने के कारण जगह तंग हो-प्रथम अग्नि को न देकर (इससे भोजन के विषयुक्त होने पर विष का ज्ञान भी हो सकता है) प्रोक्षणोदकों से सिञ्चन न करके मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित किये बिना,

निंदा करते हुए तथा निंदित और शत्रु द्वारा दिये गये अथवा उल्टे तरीके से रखे गये, अथवा अपने शरीर के लिए असात्म्य कर अन्न को न खावें।

शुष्क शाक, फल एवं अन्य भक्ष्य (लड्डु आदि) पदार्थों को छोडकर पर्युषित बासी भोजन न करें अर्थात् ये कुछ देर और कई अवस्थाओं में कई दिन पडे रहने पर भी नहीं खाये जा सकते हैं।

दही, नमक, सत्तु, जल एवं घी को छोडकर शेष पदार्थों को पुरा न खावे अर्थात् खाने को जितना दिया जावे उसमें से कुछ बचा देवे। रात्री काल में दही न खावे। न केवल खांड, घी अथवा जल आदि के बिना सत्तु खावें, तथा न रात्री में, भोजन करके, न अधिक मात्रा में, न दो बार, न बीच-बीच में जलपान करते हुए और न दातों से काटकर सत्तु को खावें।

नानृजुः क्षुयान्नाद्यान्न शयीत, न वेगितोऽन्यकार्यः स्यात्, न वाटवग्निसलिल-सोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखं निष्ठीविकावातचोंमूत्राण्युत्सृजेत्, न पन्थानमवमूत्रयेत्, न जनवति नान्नकाले न जपहोमाध्ययनमङ्गलक्रियासु श्लेष्ममसिङ् घाणकं मुञ्चेत्॥ 22

टेढे होकर न छींके, न खावें तथा न लेटें। पुरीष (शौच) आदि के वेगों के होने पर दूसरे कार्यों में न लगे तथा न लगे रहें। वायु, अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य, ब्राह्मण तथा गुरुओं की ओर थूकना, मल, वात आदि का छोडना, पाखाना तथा पेशाब करना मना है। राह पर पेशाब न करें। जहाँ पर बहुत से आदमी रहते हों, अन्न के समय, जप, होम, अध्ययन (पाठ) तथा अन्य मङ्गल क्रियाओं में खंखारना और नाक साफ करना उचित नहीं। महाभारत और मनुस्मृति में क्रमशःकहा है -

प्रत्यादित्यं प्रतिजलं प्रत्तिगां च पतिद्विजम्।
मेहन्ति ये च पथिषू ते भवन्ति गतायुषः॥ महाभारत
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मानि न गोव्रजे।
न कालकृष्टे न जले न चित्यां नच पर्वते ॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन् ।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि संस्थितः ॥
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तकेः
वाय्वग्निविप्रानादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्यमूत्रस्य विसर्जनम्॥ 22 - मनुस्मृति

न स्त्रियमवजानीत्, नातिविश्रम्भयेत्, न गुह्यमनुश्रावेयेत् नाधिकुर्यात्; न रजस्वलां नातुरां नामेध्यांनाशस्तां नानिष्टरूपाचारोपचारां नादक्षाँनादक्षिणाँ नाकामं

नान्यकामां नान्यस्त्रियं नान्ययोनिं नायोनौ न चैत्यचत्वरचतुष्पथो पवनश्मशानाघातन-सलिलौषधिद्विजंगुरुसुरालयेषु न सान्ध्योः, नातिथिषु, नाशुचिर्नाजग्धभेषजो नाप्रणीत संकल्पो नानुपस्थितप्रहर्षो नाभुक्तवान् सात्यशितो न विषमस्थो न मूत्रोच्चारपीडितो न श्रमव्यायामोपवासक्लमाभिहतो नारहसि व्यवायं गच्छेत्॥ 23

स्त्रियों की अवज्ञा (अपमान) नहीं करनी चाहिए। इनका अधिक विश्वास भी न करें, इन्हें अपनी गुप्त बातों को न सुनावे तथा न सर्वत्र अधिकार देवे। रजस्वला, रोगिणी, अपवित्र, अशक्त (कुष्ठ आदि रोग से पीडित) अनिश्चित रूप एवं आचार, स्वभाव वाली, जो कामशास्त्र में चतुर न हो अथवा मैथुन में अशक्त, कामरहित अथवा जो चाहती न हो, जो अनुकूल न हो, अन्य पुरुष की कामना रखने वाली, परस्त्री, परयोनि (अर्थात् स्त्री को छोडकर अन्य पशु आदि की योनि), तथा अयोनि (गुदा आदि मार्ग) में और चैत्य, आंगन, चौराहों, उपवन (फुलवाडी, बाग-बगीचा), श्मशान तथा बध्य स्थान आदि स्थलों पर दोनों संध्याकाल में निषिद्ध तिथियों पर, स्वयं अपवित्र, बिना बाजीकरण औषध सेवन करके संकल्प के बिना, प्रहर्ष (ध्वजोच्छ्राय) के बिना, भोजन न करके अथवा अत्याधिक भोजन करके विषम स्थल पर अथवा आसन से , मूत्रवेगयुक्त, श्रम (थकावट) व्यायाम, उपवास तथा क्लम (थकावट) से पीडित होता हुआ मैथुन न करें। मैथुन एकांत में होना चाहिए।

न सतो न गुरुत् परिवदेत्, नाशुचिरिभि चारकर्म चैत्यपूज्यपूजाध्ययनम् अभिनिर्वर्तयेत्॥ 24

सत्पुरुषों और गुरुओं की निन्दा न करनी चाहिए तथा अपवित्र होते हुए अभिचार कर्म, चैत्य एवं पूज्यों की पूजा तथा पठन-पाठन न करना चाहिए।

न विद्यत्स्वनार्तवीषु नाभ्युदितासु दिक्षुनाग्निसंप्लवे न भूमिकम्पे न महोत्सवे नोल्कापाते न महाग्रहोपगमने न नष्टचन्द्रमां तिथो न सन्ध्ययोर्नामुखाद् गुरोर्नावपतित नातिमात्रं न तान्तं न विस्वरं नावस्थितपदं नातिद्रुतं न विलाम्बितं नातिक्लीवं नात्युच्चैर्नातिनीचैः स्वरैरध्ययनमभ्यसेत्॥ 25

बेमौसमी बिजली चमकने पर, दिशाओं के प्रज्वलित होने पर, कही आस-पास आग लग जाने पर, भूकम्प के समय, बडे उत्सव के समय, उल्कापात होने पर, सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण होने पर, अमावस के दिन तथा सन्ध्या समय नहीं पढना चाहिए। गुरुमुख से बिना पढे भी पठन का अभ्यास न करना चाहिए। पढते समय हीन वर्ण, अतिमात्रा (अधिक वर्ण) से अध्ययन, रुक्षस्वर, विस्वर (अशुद्ध स्वर) अनवस्थित पद (अर्थात् प्रत्येक पद को सुस्पष्ट एवं पृथक्-पृथक् पढना), जल्दी-

जल्दी अथवा धीरे-धीरे (अर्थात् एक मात्रा के पठन में जितना काल लगना चाहिये उससे अधिक काल लगाना), अतिक्लीव (अर्थात् बहुत ही धीरे-धीरे पढना), अत्यन्त ऊँचे और अत्यन्त नीचे स्वर से न पढना चाहिये।

नातिसमयं जह्यात्, न नियमं भिन्द्यात्, न नक्त नादेये चरेत्, न संध्यास्वभ्यवहार अध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवी स्यात् न लुब्धमूर्खक्लौष्टक्लीबैः सह संख्य कुर्यात्, न मद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिः स्यात्, न गुह्यं विवृणुयात्, न कश्चिदवाजानीयात्, नाहमानी स्यान्नादक्षो नादक्षिणो नासूयकः, ब्राह्मणान् परिवदेत्, नगवां दण्डमुद्यच्छेत्, न वृद्धान् न गुरुन् न गुणान् न नृपान् वाऽधिक्षिपत् न चातिब्रुयात्, न बान्धवानुरक्तकृच्छ्र-द्वितीयगुह्यज्ञान बहिः कुर्यात्॥ 26

किसी सोसायटी, समाज या संस्था के नियमों को नहीं तोडना चाहिए। अन्य शास्त्रोक्त नियमों को न तोडें। रात्रि में या अस्थान पर न घूमे। संध्या समय भोजन, अध्ययन(पठन-पाठन), मैथुन तथा सोना (निद्रा) नहीं करनी चाहिये, यह समय उपासना का है। लोभी, मूर्ख, कुष्ठ आदि रोगों से पीडित तथा नपुंसकों के साथ मैत्री न करें। मद्यपान, जुआ खेलना, वेश्या के संग नीच कर्म न करना चाहिये। किसी की गुप्त बातों को प्रकाशित न करें। किसी की अवज्ञा(अपमान) न करें अहंकार से सर्वदा मुक्त होना चाहिये। कर्म कुशल होना चाहिये। दान करना चाहिये अथवा किसी से विरोध न करें। किसी की चुगली तथा ब्राह्मणों अथवा अपने प्रेमियों की निंदा न करें। गायों पर डंडा न उठाएँ वृद्ध, गुरु, पंचायत, राजा इनकी अवज्ञा या निंदा न करें। बहुत न बोलें। भाई-बंधु, अनुरागी(प्रेमी) तथा विपत्ति में सहायता करनेवाले मित्र और रहस्य जाननेवाले (घर की गुप्त बातों को जाननेवाले) को कभी अपने से अलग न करें।

नाधीरो नात्युच्छ्रितसत्वः स्यान् नाभृतभृत्यो, नाविस्वजनो, नैकः सुखौ, न दुःखशीलाचारोपचारो, न सर्वविश्रम्भी, न सर्वाभिशकी, न सर्वकालविचारी॥ 27

धैर्यरहित न हो। उद्धत मन वाला न हो। अपने भृत्य आदि का पालन-पोषण करें अथवा उनकी भृति (वेतन) आदि को न दबा ले। ऐसा कर्म कभी न करें जिससे स्वजन भी विश्वास करना छोड दें। अकेला ही सुखी न हो। अपने सुख में दूसरों को भी हिस्सा दें अर्थात् किसी सुस्वादु पदार्थ को बिना बांटे अकेला ही नहीं खा जाना चाहिये और दुःशीलयुक्त और दुराचारी भी न होना चाहिये। सब ही पर विश्वास भी न करें और सब पर संदेहात्मक दृष्टि भी न रखे। हर समय विचारों में भी न पडा रहे।

न कार्यकालमतिपातयेत्, नापरोक्षितमाभिनिविशेत्। नेन्द्रियवशगः स्यात्, न चञ्चलं मनोऽनुभ्रामयेत्, न बुद्धिन्द्रियाणमतिभारमादध्यात्, न चातिदीर्घसूत्री स्यात्, न

क्रोधहर्षावनुविदध्यात्, न शोकमनुवसेत्, न सिद्धावोत्सुक्य गच्छेन्नासिद्धौ दैन्यम्॥ 28

कार्यकाल (कार्य करने के समय) को ऐसे ही न गवां दे। अपरीक्षित कार्य में एकदम न लग जावे। इंद्रियों के वश में न आवे। चञ्चल मन को खुला ही न छोड दे। बुद्धि और इंद्रियों पर अत्यंत भार न डाले अथवा ज्ञानेंद्रियों पर अत्यंत भार न डाले। आलसी न बने। अत्यंत क्रोध तथा अत्यंत हर्ष के वश होकर कर्म न करें। चिरकाल तक शोक में ही न पडे रहें। सिद्धि फल प्राप्ति में कृत-कार्य होने पर हर्षित न हो और अकृत कार्य होने पर दुःखी भी न हो; इस प्रकार राग-द्वेष प्रवृत्ति द्वन्दो से मुक्त रहने का प्रयत्न करें।

प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत्, हेतुप्रभावनिश्चितः स्यात्, हेत्वारम्भनित्यश्च, न कृतमित्याश्वसेत्, न वीर्यं जह्यान्न चापवादमनुस्मरेत्॥ 29

प्रत्येक कार्य करते हुए अपनी प्रकृति का ध्यान रखे अथवा उत्पत्ति कारण पञ्च महाभूत रूप प्रकृति का ध्यान रखे अर्थात् उसकी अनित्यता का स्मरण होते ही मनुष्य राग द्वेष द्वारा पराभव को प्राप्त नहीं होते। शुभाशुभ कर्म से शुभाशुभ फल होगा ऐसा निश्चित् जाने और हर समय शुभकर्मों को करने में तत्पर रहे। ''कर लिया'' यह समझ कर ही उपेक्षा न कर बैठे। वीर्य का नाश न करें। किसी के द्वारा की हुयी निंदा को स्मरण न करें अथवा शुभकर्म करते हुये लोकापवाद से न डरे।

नाशुचिरुत्त ममाज्याक्षततिलकुशसर्षपैरग्निं जुहुयादात्मानमाशीभिराशासानः अग्निर्मे नापगच्छेच्छरीरात् वायुर्मे पाणानादधातु विष्णुर्मे बलमादधातु इन्द्रो मे वीर्य शिवा मां प्रविशन्त्वापः, आपोहिष्ठेतत्यपः स्पृशेत्, द्विः परिमृज्योष्ठौपादौ चाभ्युक्ष्य मूर्धानि खानि चोपस्पृशेदर्भिर्हृदयं शिरश्च ब्रह्मचर्य ज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षोपेक्षाप्रशमपरश्च स्यादिति॥ 30

अपवित्र आवस्था में उत्तम घृत-गौघृत, अक्षत, तिल, कुश तथा सरसों आदि औषधियों द्वारा होम न करें।

''अग्निर्मे नापगच्छेच्छरीरात्'' इत्यादि मंत्र तथा ''आपोहिष्टा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन्। महेर्नाय चक्षसे'' इस आशीर्वादात्मक मंत्र द्वारा अपने अंदर बल आदि की आकांक्षा करते हुये स्नान करें अथवा जल द्वारा अंग स्पर्श करें। प्रथम ओष्ठ और पैरों पर दो-दो बार जल के छीटें देकर मस्तक, चक्षु आदि इंद्रिय सम्पूर्ण देह हृदय एवं सिर पर छींटे देवे। छींटे देते समय उस अङ्ग पर ध्यान करें और ईच्छा शक्ति द्वारा उन्हें दृढ तथा सबल बनाने का प्रयत्न करें।

मेरे शरीर से अग्नि दूर न हो जावे, वायु मेरें प्राणों की रक्षा करें, विष्णु मेरे शरीर में बल का आंधान करे, इंद्र मेरे वीर्य को बढावे, कल्याण दाता जल हमारे शरीर में

प्रवेश करे तथा कल्याणकारक जल हमारे शरीर में सुंदरता, सुडौलपन एवं बल का आधान करें। यह दोनों मंत्रों का भावार्थ है।

यहाँ पर ''अपःस्पृशेत्'' से कई, आचमन करें ऐसा अर्थ करते हैं। इन दोनों मंत्रों से एक एक आचमन अर्थात् दो आचमन। गोभिल आदि में तीन बार आचमन का विधान है, पश्चात् अङ्ग स्पर्श करें।

ब्रह्मचर्य, दान, मित्रता, दया, प्रसन्नता तथा पाप शांति में तत्पर रहना चाहिए।

पञ्चपञ्चकमुद्दिष्टं मनो हेतुचतुष्टयम् ।
इन्द्रियोपक्रमेऽध्याये सद्वृत्तमखिलेन च॥ 31

इस इंद्रियोंपक्रमणीय में पांच पञ्चकों का तथा मन का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् इसके पश्चात् हेतु चतुष्टय प्रकृति एवं विकृति के चार कारण (समयोग आदि) बतायें गये हैं तथा अशेष रूप से सद्वृत्त (सच्छील) का उपदेश किया गया है।

स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यये॥ 32

जो विधि पूर्वक इस उपदिष्ट स्वस्थ व्रत का अनुष्ठान करता है वह निरोग रहता हुआ सौ वर्ष तक जीवित रहता है।

नृलोकमापूरयते यशसा साधुसम्मतः ।
धर्मार्थावेति भूतानां बन्धुतामुपगच्छति॥ 33

साधु पुरुषों से पूजनीय वह पुरुष यश द्वारा सम्पूर्ण मनुष्य लोक में विख्यात हो जाता है, धर्म और अर्थ को प्राप्त होता है, प्राणिमात्र का बंधु कहलाता है।

परान् सुकृतिनो लोकान् पुण्यकर्मा प्रपद्यते।
तस्माद्वृत्तमनुष्टेयमिदं सर्वेण सर्वदा ॥ 34

वह पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्यात्माओं के उत्कृष्ट लोक को प्राप्त होता है, अतः सम्पूर्ण मनुष्यों को चाहिये कि वे सर्वदा इस स्वस्थवृत्त का अनुष्ठान किया करें जिससे उन्हें भी पुण्यलोक की प्राप्ति हो।

यच्चान्यदपि किञ्चित्स्यादनुक्तमिह पूजितम्।
वृत्तं तदपि चात्रेयः सदैवाभ्यनुमन्यते ॥ 35

इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते सूत्रस्थाने स्वस्थवृत्तचतुष्के इन्द्रियोप-क्रमणीयो नामाऽष्टमोध्यायः॥ 8 इति स्वस्थवृत्तचतुष्कः॥ 2

सद्वृत्त में कहे गये आचार आदि से अतिरिक्त यदि अन्य भी कोई साधुसम्मत आचार हो तो उसका भी पालन करना चाहिये; ऐसा आत्रेय मुनि मानते हैं। (च.सं.)

परिच्छेद - 7

स्वस्थ मन - स्वस्थ शरीर

अरस्तु का प्रसिद्ध कथन है- ''स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है।'' शरीर और मन का स्वस्थ संतुलन होने पर ही व्यक्ति सुख और शांति से रहता है। यदि इनके संतुलन में कोई त्रुटि आ जाये तो एक ही अवस्था दूसरे को रोगग्रस्त कर देती है। भला अस्वस्थ शरीर वाला व्यक्ति शुद्ध, स्वस्थ, सशक्त चिंतन कैसे कर सकता है ? रोगी व्यक्ति के विचार भी तो रोगग्रस्त ही होते हैं। रोगी व्यक्ति के विचार हमेशा निराशावादी और अंधकारमय होते हैं। इसी प्रकार रोगी मन वाला व्यक्ति भी शरीर को स्वस्थ नहीं रख सकता। मन का रोग शीघ्र ही शरीर पर भी अपना कुप्रभाव डालता है और व्यक्ति का शरीर भी रोगी हो जाता है। इसलिए स्वस्थ, सुखी और शांतिमय जीवन की पहली आवश्यकता है - शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में संतुलन।

मनुष्य का शरीर और मन दो स्थितियों में रहता है - एक स्थिति को हम जागृति की स्थिति कहते हैं, दूसरी को सुषुप्ति। जागृति की स्थिति में व्यक्ति सचेत अवस्था में रहता है। इस स्थिति में उसकी ज्ञानेंद्रियाँ और कर्मेंद्रियाँ सक्रिय रहती हैं। उसका सम्बन्ध बाहरी जगत् से बना रहता है। इसी चेतन स्थिति में हम अपने रोज के काम करते हैं। इसके विपरीत सुषुप्ति की स्थिति में हमारी ज्ञानेंद्रियाँ और कर्मेंद्रियाँ दोनो ही लगभग निष्क्रिय रहती हैं। यदि इनमें कुछ आंशिक सक्रियता रहती भी है तो उसकी हमें चेतना नहीं रहती। इस स्थिति में बाहरी जगत् से हमारा सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। इसलिए इस स्थिति को अचेतन या अवचेतन की स्थिति भी कहते हैं।

सुषुप्ति की स्थिति को साधारण रूप से नींद कहा जाता है। नींद प्रकृति चक्र का एक खण्ड है। यह हमारे शरीर के संतुलन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। यों नींद के बिना हम कुछ समय तक रह सकते हैं लेकिन लम्बे समय तक नींद के बिना रहना मुश्किल है क्योंकि नींद के अभाव में शारीरिक व्यवस्था का संतुलन टूट जाता है।

नींद की स्थिति के बारे में डॉक्टरों का यह मत है कि जो लोग यह कहते हैं कि नींद में हम सर्वथा अचेतन रहते हैं और शरीर एवं मन पूरी तरह सक्रिय हो जाते हैं, वे लोग गलत हैं। दरअसल हमारा शरीर तो नींद के समय भी उसी प्रकार बढता रहता है, जिस तरह जागृति की अवस्था में। हमारे बाल और नाखुन नींद में भी बढते या बदलते रहते हैं। इसी तरह हमारे चेहरे की झुर्रियाँ और आँखों के नीचे दिखने वाली काली रेखायें भी नींद

में बनती रहती हैं। कई लोगों को नींद में चलते रहने की आदत होती है। वे लोग अचेतन अवस्था में ही नींद में उठते हैं और घर के बाहर चल पडते हैं। इससे सिद्ध होता है कि नींद की स्थिति में शरीर की या मन की क्रियाएँ बिलकुल बंद नहीं हो जाती वरन् चलती रहती हैं; सिर्फ हमें इनका ज्ञान नहीं रहता है। नींद में भी शरीर मन अद्भूत रूप से नियंत्रण में रखता है।

कुछ लोगों की, जो दिन भर अपने व्यवसाय से या व्यापार के कारण अत्यंत तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, रात के समय बडबडाने की आदत होती है। इसी तरह कुछ औरतें नींद में भी कुढती और भडकती रहती हैं। एक व्यक्ति था उसे रात को उन सब बातों को दोहराने की आदत थी, जो वह दिन भर बोला करता था। नींद में उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता था कि वह क्या बोल रहा है ? ऐसा इसलिए होता है कि वे लोग दिन भर अत्यंत कृत्रिम जीवन जिया करते हैं, उनकी मनःस्थिति हमेशा तनावपूर्ण बनी रहती है। उनका मन दिनभर चिंता से भरा रहता है। वे भीतर ही भीतर कुछ न कुछ सोचते रहते हैं। रात के समय नींद में भी वही बातें उनके मन में घूमती रहती हैं। इस कारण रात को भी वे अनजाने में उन्हीं बातों को दोहराते रहते हैं।

कई लोगों का जीवन इतना तनाव पूर्ण होता है कि उन्हें रात के समय या तो नींद आती ही नहीं और आती भी है तो इतनी कच्ची कि जरासी आहट या झटके से टूट जाती है और फिर रात भर नींद नहीं आती। रात के अंधेरे में बिस्तर पर करवटे बदलते हुये वे अनेक चिंताओं और भयावह विचारों से ग्रस्त हो जाते हैं, इससे उनका स्वास्थ बिगडता चला जाता है और वे क्रमशः अनिद्रा रोगी हो जाते हैं। ऐसे भी लोग आपने देखे होंगे जिन्हें नींद ही नहीं आती, वे रात को नींद लाने वाले इंजेक्सन लगवाते हैं या अफीम आदि ऐसा कोई नशीला पदार्थ प्रयोग करते हैं जिससे उन्हें कृत्रिम नींद आ जाये। कई लोगों को तो इंजेक्सनों आदि से भी नींद नहीं आती और वे अंत में अनिद्रा से तंग आकर आत्मघात कर लेते हैं। अनिद्रा के रोग का रोगी बहुत जल्द कमजोर हो जाता है। इससे शरीर और मन दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

नींद वस्तुतः प्रकृति द्वारा नियोजित और निर्धारित विश्राम की स्थिति है। दिन भर काम करने से व्यक्ति का शरीर और मन थक जाता है। डॉक्टरों का कहना है कि कार्यरत रहने से शरीर के कुछ तत्त्वों के अणु विखंडित हो जाते हैं। इसी प्रकार मन भी दिन भर विचार और मनन करने से थक जाता है, इसलिए इन्हें विश्राम की आवश्यकता होती है। रात के समय नींद के द्वारा शरीर और मन दोनों विश्राम करते हैं। इस विश्राम से उनकी थकावट दूर हो जाती है और वे सुबह के समय एक बार फिर तरोताजा होकर परिश्रम करने को तैयार हो जाते हैं।

जिन व्यक्तियों को अच्छी तरह नींद नहीं आती या फिर जिन्हें नींद बिल्कुल ही

नहीं आती और मस्तिष्क को विश्राम नहीं मिलता इस कारण उनका शरीर धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है। वे शिथिल और सुस्त हो जाते हैं। उनके चिंतन और मनन की शक्तियाँ भी कमजोर होने लगती है। इसका प्रभाव उनके व्यवसाय या व्यापार पर पडता है। कार्यक्षमता की क्षति से व्यापार या व्यवसाय में वे पूरी शक्ति या ध्यान नहीं दे पाते। इस तरह क्रमशः वे अपनी समृद्धि और सुख-शांति खो बैठते हैं।

नींद न आने या हल्की नींद आने का प्रमुख कारण है कि मानसिक चिंता या उद्वेग। जो लोग हमेशा चिंताग्रस्त रहते हैं, उनके मस्तिष्क को विश्राम करने का समय नहीं मिलता। तनाव के कारण उनका शरीर और मन कभी विश्राम की स्थिति में नहीं आ पाता। कुछ लोगों को ऐसी आदत होती है कि वे दफ्तर या दुकान से लौटने के बाद भी घर पर आकर फिर काम करने लगते हैं। रात को भोजन करते हुए भी व्यवसाय या व्यापार की चिंता में लीन रहते हैं। बिस्तर पर सोने जाने के समय भी वे कुछ न कुछ सोचते ही रहते हैं। यहाँ तक कि बिस्तर पर लेट कर भी वे अपने दिन के कामों के बारे में सोचते रहते हैं। भला ऐसी स्थिति में उन्हें नींद कैसी आ सकती है।

ऐसे लोग यह समझते हैं कि इस प्रकार दिन-रात काम में लगे रहने से वे अपने व्यापार या व्यवसाय में उन्नति कर लेंगे। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि इस प्रकार अपना स्वास्थ्य नष्ट करके यदि समृद्धि पायी भी तो वह किस काम की। इस तरह स्वास्थ्य नष्ट करके कमाया हुआ धन किस प्रकार कष्ट से पैदा होता है उसी प्रकार कष्ट से चला भी जाता है।

झगडते, झींकते, खीजते या सोचते हुए बिस्तर पर जाने का अर्थ यह है कि आप नींद को भगा रहे हैं। कुछ लोग रात को सोने से पहले किसी बात पर पत्नी से झगडा कर लेते हैं। इसी तरह कुछ औरतें रात को खीजती, झींकती हुयी सोने के लिए जाती है। यदि ऐसी स्थिति में उन्हें नींद न आये तो किसी का क्या दोष ? फिर तनाव पूर्ण स्थिति में बिस्तर पर जाने के बाद यदि उन्हें नींद आ भी जाये तो भी उससे कोई लाभ नहीं होता। रात को उन्मत्त सोने से हम सुबह के समय तरोताजा नहीं उठ पाते।

इसी प्रकार कुछ लोग चिंताओं और भय का बोझ सिर पर रखे-रखे सोने चले जाते हैं। इससे उन्हें रात भर भ्रम रहता है, नींद कच्ची आती है । कभी-कभी भयावह और डरावने स्वप्न भी आते हैं। उनकी अचानक नींद टूट जाती है और वे सो नहीं पाते हैं। स्वप्न क्यों आते हैं ? यदि इस प्रश्न पर वैज्ञानिकों की राय ली जाय तो वे बतायेंगे कि इसके दो कारण है - 1) शारीरिक 2) मानसिक। शारीरिक कारण है बदहजमी और पेट के रोग और मानसिक कारण है मन की अतृप्त इच्छायें। प्रायः जिन लोगों की पाचन शक्ति और पाचन प्रणाली ठीक नहीं होती, वे रात को ठीक प्रकार से सो नहीं पाते। जब कभी-कभी

उन्हें नींद आती है तो स्वप्न उन्हें घेर लेते हैं। इसी प्रकार हमारे मन की अतृप्त इच्छायें होती हैं जो दबकर हमारे अवचेतन मन में चली जाती है। यदि इच्छायें नींद के समय हमारे चेतन मन की पकड ढीली होने पर अवचेतन मन से ऊपर उठ कर चेतन मन में आ जाती है और इन अतृप्त इच्छाओं की तृप्ति हम स्वप्नों द्वारा करते हैं।

स्वप्न भले भी होते हैं और भयानक तथा भयावह भी, किंतु स्वप्न कैसे भी हो, वे किसी भी रूप में हमारे अनिष्ट के संकेत नहीं होते। कुछ लोगों को रात के समय जब कोई दुःस्वप्न आता है तो उनकी नींद टूट जाती है। फिर वे सो भी नहीं पाते और रात भर जगे रहकर उन स्वप्नों का अर्थ ही निकालते रहते हैं। वे अपने आप ही कई अनिष्टों और संकटों की कल्पना कर लेते हैं, बस उनकी रात की रही सही नींद भी इसी चिंता में पूरी हो जाती है।

एक व्यापारी था। उसे रात के समय नींद या तो आती ही नहीं थी या आती भी तो बहुत हल्की। उसका स्वास्थ्य बहुत ही क्षीण होने लगा। उसने किसी से इस बारे में सलाह ली तो उसे सुझाव दिया गया कि शाम को घर लौटने पर वह अपने साथ अपने काम-काज लेकर घर न जाय। उसका जो कुछ भी अपना काम बाकी रह गया हो उसे वह या तो कार्यालय में ही छोड दे या उसे पुरा करके ही घर लौटे और शाम को घर लौटने पर वह अपने कारोबार के बारे में चिंता न करें। उसने इस सुझाव को मान लिया हालाकि यह सुझाव मानना उसके लिए सरल नहीं था। अब जब कभी भी वह शाम को घर लौटता तो बिल्कुल मुक्त और स्वच्छंद। घर पर आकर वह प्रीति से अपने परिवार के सदस्यों के साथ बैठता और रात हंसी खुशी से बिस्तर पर जाता। कहते हैं कि कुछ ही दिनों के बाद उसकी शिकायत दूर हो गयी। वह सुख से चैन की नींद सोने लगा।

बात दरअसल यह है कि लोग विश्राम करना ही नहीं जानते। विश्राम करना कला है। यह नहीं कि जहाँ और जब भी आया लेट गये और सोच लिया कि हमने आराम कर लिया है। इस तरह विश्राम नहीं होता, बल्कि समय ही नष्ट होता है और उद्विग्नता बढती है। विश्राम करने के लिए आवश्यक है कि शरीर स्वच्छ हो। जिस स्थान पर आपको विश्राम करना या सोना है, वह मलिन न हो और सबसे आवश्यक बात तो यह है कि आपका मन भय, चिंताओं और सोच-विचार से मुक्त हो।

यदि आपको रात के समय अच्छी तरह नींद नहीं आती तो आपको चाहिये कि सबसे पहले अपने को चिंताओं के रोग से मुक्त करें। शाम को घर लौटते हुये अपने व्यवसाय या कारोबार सम्बंधी सभी पूरे या अधूरे काम को दफ्तर की मेज पर ही छोड आयें। फिर घर लौटकर अपनी पत्नी या बच्चों के साथ हंसे, खेले इससे आपका मन शुद्ध होगा। शाम को भोजन करने से पहले कुछ देर तक एकांत स्थान पर थोडे समय के लिए चुपचाप बैठकर

प्रभू का ध्यान करें। प्रार्थना करने से मन निर्मल और पावन बनता है।

रात सोने से पहले कोई अच्छी पुस्तक पढने की आदत डालें। रात सोने से पहले किसी महान् लेखक की पुस्तक के दो-चार पृष्ठ पढ लेने से आपके मन में शुद्ध और निर्मल विचार आयेंगे। कुछ लोगों को रात सोते समय अखबार पढने की आदत होती है। अखबारों में क्या होता है ? हत्याओं, चोरियों, लुट-पाट और युद्ध की घटनाओं का वर्णन। इनको पढकर मन मुक्त नहीं, चिंताग्रस्त होता है। इसलिए अखबार के बजाय रोचक, प्रेरणादायक पवित्र ग्रंथों को ही पढना श्रेयस्कर होता है। अपने सिरहाने हमेशा एक-दो श्रेष्ठ साहित्यिक रचनायें रखिये। जैसे ही बिस्तर पर आयें, झट से एक-दो पृष्ठ पढने लगे। इससे मन विश्राम के लिए तत्पर हो जाता है।

नींद और स्वस्थ नींद लाने का एक और मनोहर ढंग है - बिस्तर पर लेटकर अंधेरा कर दीजिये और लेटे-लेटे ही अपने जीवन की पिछली सुखद घटनाओं को मन ही मन दुहराइये। उन मनोहर स्थानों के चित्र खींचिये जो आपने देखे हैं। अपने चित्रों पर हंसी-मजाक की घटनायें दुहराइये। पिछली यादें बहुत मनोहर ओर प्रिय होती हैं। उन्हें दुहराते-दुहराते ही आपको नींद आ जायेगी और पता ही नहीं चलेगा कि आप कब सो गये। नींद लाने का यह बहुत सरल और साफ-सुथरा तरीका है।

डॉक्टरों का कहना है कि नींद लाने में जितना उपयोगी उपाय आत्म-चिंतन है, उतना और कोई नहीं। यदि आपको नींद नहीं आती तो यह सोचते हुये बिस्तर पर न जाइये कि आपको आज भी नींद नहीं आयेगी। इस घबराहट के साथ आप सोने के लिए जायेंगे तो आपको नींद कैसे आ सकती है? बिस्तर पर जाने से पहले अपने मन से कहिये - 'आज तो मैं खूब सोऊंगा। आज तो मैं बहुत थका हुआ हूँ, आज मुझे बहुत नींद आयेगी।' बस कोई कारण नहीं कि आपको नींद न आये।

स्वस्थ नींद और उचित विश्राम हमारे शरीर और मन के लिए बहुत लाभकारी होते हैं। यदि रात को नींद अच्छी तरह आये व्यक्ति किसी तरह की चिंताओं से ग्रस्त न हो तो सुबह के समय बिस्तर से निकलने पर वह अपने-आप को तरोताजा और शक्तिवान् महसूस करता है। उसके शरीर में स्फूर्ति और ताजगी होती है। उसका मस्तिष्क भी ताजा ओर सशक्त होता है। शरीर ओर मन दोनों की कार्यक्षमता तीव्र और अधिक हो जाती है।

सच है कि सुख-शांति और समृद्धि के लिए कल्पना-प्रवणता, परिश्रम, अध्ययन और चिंतन-मनन की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही उचित और स्वस्थ विश्राम की भी।

स्वस्थ नींद का एक और लाभ है। नींद के समय जब मन बाह्य जगत् की चिंताओं से युक्त होता है तो अनेकों ऐसी समस्यायें, जिन पर व्यक्ति दिन-भर विचार

करता रहता है, नींद के समय अवचेतन मन से उठकर चेतन में चली आती हैं। मन स्वयं ही उन पर विचार करने लगता है और अक्सर नींद में वे समस्यायें हल हो जाती हैं। कई विद्वानों का अनुभव है कि अनेक ऐसे प्रश्न, जिन्हें वे दिन के समय कितना ही प्रयत्न करने पर भी नहीं सुलझा पाते रात के समय नींद में स्वयमेव हल हो जाते हैं। ज्योमैट्री का जन्म सपने में ही हुआ था। कई चित्रकारों का कहना हैं उन्हें नींद में अपने चित्रों के रंग सूझ जाते हैं। अंग्रेजी के महान् कवि व्यूवोल्फ की अपनी प्रसिद्ध रचना नींद में ही सूझी थी।

यदि आप अपवादग्रस्त हों और आपको रात के समय नींद आती न हो तो उसका सरलतम उपाय है कि आप अपने को सुझाव दे। डॉक्टरों का कहना है कि आत्म-सुझावों से बढकर और कोई दवा कारगर नहीं होती। अपने से कहिये कि मैं स्वस्थ हूँ, मुझे भली-भाँति नींद आयेगी। बिस्तर पर लेटने के बाद भी अपने को स्वस्थ सुझाव देते रहिये। अपने अंगों को स्वस्थ और नींद से मदमाता महसूस कीजिये। कोई कारण नहीं कि आपको गहरी नींद न आये।

डॉक्टरों का कहना है कि सुझावों का प्रभाव बालकों पर बहुत शीघ्र और स्वस्थ रूप से पडता है। बालक सुझावों से बहुत शीघ्र और तीव्र गति से सीखते हैं। कई समझदार मातायें अपने बालकों को हमेशा स्वस्थ सुझाव देती रहती हैं। बालक के मन पर उन सुझावों का प्रभाव पडता है और वह प्रोत्साहित और प्रेरित होकर बहुत शीघ्रता से प्रगति करता है।

कुछ मातायें हमेशा अपने बच्चों से कहती रहती हैं कि तू बुद्धू हैं, तू तो मूर्ख है, तुझे कुछ अक्ल नहीं, फेल हो जायेगा, आदि-आदि ऐसे बच्चे के मन में यह बात बैठ जाती है कि वह सचमुच किसी योग्य नहीं-वह कभी सफल नहीं हो सकता और देखिये तो वह सचमुच ही असफल हो जाता है। इसलिए आवश्यक है कि आप अपने बालक को स्वस्थ और प्रेरणादायक सुझाव दें, निरुत्साहित करने वाली बातें न कहे।

आधुनिक मनोविज्ञान का कहना है कि मन का शरीर पर गहरा प्रभाव पडता है। डॉक्टरों का कहना है कि आपके शारीरिक रोग मन की ही अस्वस्थता के कारण उत्पन्न होते हैं। इंग्लैंड के एक डॉक्टर ने कहा है कि मन शरीर को किस सीमा तक प्रभावित करता है, यह अभी खोज का विषय है। लेकिन अभी तक जितनी खोज हुई है उससे पता लगता है कि मन की प्रत्येक स्थिति शरीर के किसी न किसी अंग को किसी न किसी रूप में प्रभावित अवश्य करती है।

डॉक्टरों ने वर्षों खोज करने के बाद यह सिद्ध किया है कि तिल्ली-सम्बन्धी रोग और मेदे या आमाशय की अनेकों खराबियाँ, ईर्ष्या, स्वार्थ और लोभ के कारण पैदा होती हैं। डॉक्टर स्नो नाम के एक विशेषज्ञ का कहना है कि स्तन और मूत्र नलिका का नासूर

अक्सर उद्वेग, तनाव और चिंता के कारण उत्पन्न होता है। अनेक रक्त सम्बन्धी विशेषज्ञों का कहना है कि मानसिक चिंताओं के कारण रक्त तथा चर्म सम्बन्धी कई रोग हो जाते हैं।

तीव्र क्रोध या भय के कारण भी कई शारीरिक विकार पैदा हो जाते हैं। पीलिया रोग का कारण तो डॉक्टरों ने तीखे क्रोध को ही बताया है। इसी प्रकार गहरे मानसिक अघात या धक्के से अर्धांग या लकवा हो जाता है। मस्तिष्क रोग-विशेषज्ञों का कहना है कि मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक रोग मन की अस्वस्थता के कारण ही बन पाते हैं।

यह स्वाभाविक है कि रोगी मन, शरीर को भी रोगी बना देता है। इसलिए शरीर के स्वास्थ्य पर ध्यान देना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी मन के स्वास्थ्य का ध्यान रखना भी है।

कुछ लोगों का स्वभाव भी अपने को रोगी प्रकट करने का हो जाता है। वे जहाँ कहीं जाते हैं, जिस किसी से मिलते हैं, उसी से कहते हैं-''भाई, मैं तो बीमार रहता हूँ।'' स्वास्थ्य के बारे में यह दृष्टिकोण बडा हानिकारक है। अपने को रोगी कहने और रोगी समझने वाले व्यक्ति स्वस्थ कैसे रह सकता है ? जो व्यक्ति हमेशा यह सोचता रहेगा कि वह रोगी है, उसे रोग है, वह स्वयं ही अपना स्वास्थ्य नष्ट कर देता है। यदि आपको कोई रोग है भी तो बार-बार उसकी माला जपने से क्या रोग ठीक हो जायेगा? रोग तो दवा से ठीक होता है, डॉक्टर की सलाह से ठीक होता है। यदि आप चिंता करेंगे तो उससे रोग और जोर पकडेगा। जो रोग शरीर में नहीं होगा वह भी पैदा हो जायेगा। स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थ विचार जरूरी हैं। अपने को स्वस्थ महसूस कीजिये, अपने से कहिये मैं स्वस्थ हूँ। कभी कोई पूछे तो यह मत कहिये कि मैं बीमार हूँ। यदि आपकी तबीयत भी खराब है, तो भी कहिये कि स्वस्थ हूँ। स्वस्थ कहने से व्यक्ति स्वस्थ रहता है; बीमार कहने से व्यक्ति सचमुच बीमार हो जाता है।

यदि आपको यह संदेह हो जाये कि आपको कोई रोग है तो लोगों से कहते न रहिये, सीधे डॉक्टर के पास जाइये और अपने संदेह का निवारण कीजिये। यदि आपको कोई भी रोग होगा तो वह उचित सलाह देगा। यदि वह आवश्यक समझेगा तो आपको दवा देगा। आपका रोग ठीक हो जायेगा। लेकिन अगर आप डॉक्टर को दिखाने के बजाय खुद ही अपने को रोगी समझते रहेंगे तो कोई रोग न होने पर भी आपके मनोविकारों के कारण आपके शरीर में कोई न कोई रोग पैदा हो जायेगा।

कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे हमेशा ढीले-ढाले, शिथिल और सुस्त बने रहते हैं। ऐसे लोगों को अगर थोडा-सा दर्द हो जाये या हल्का सा बुखार भी बढ जाता है तब ये सहन नहीं कर पाते तथा चिल्लाते हैं। सुस्त बने रहना, उदास और अवसादग्रस्त रहना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हैं, यदि मन का भाव रोगी होगा, मन का दृष्टिकोण

रोगी होगा तो व्यक्ति जल्दी ही रोग का शिकार हो जायेगा।

कुछ लोग समझते हैं कि विचारों का कोई महत्त्व नहीं होता। आपने कइयों को यह कहते हुये सुना होगा - ''भाई सोचने से क्या होता है? जो होना होगा, खुद ही हो जायेगा।'' ऐसे भौतिकवादी लोग नहीं जानते कि मनुष्य के विचार ही उसके भाग्य का निर्माण करते हैं। शरीर तो पशुओं के पास भी हैं, लेकिन वे सभ्यता या संस्कृति का विकास नहीं कर पाते। मनुष्य ही अकेला प्राणी है जिसने इस पृथ्वी पर इतनी उन्नति की है। यह उन्नति कैसे सम्भव हो सकी है ! स्पष्ट है - विचारों से, कल्पना से, उत्साह से।

विचार कोई अमूर्त, अशक्त धारणायें नहीं हैं। विचार शक्तिवान्, जीवन्त और गतिशील धारायें हैं जो एक बार प्रकट होने पर फिर दबाई नहीं जा सकती। एक बार एक व्यक्ति के मस्तिष्क में कोई विचार आ जाये तो वह उसे वैसे ही प्रभावित करता है जैसे दन्त कथाओं के पात्रों को प्रेत या देवदूत प्रभावित करते हैं। शुभ विचार व्यक्ति को देवदूत के समान सुख, सफलता और समृद्धि की ओर ले जाते हैं और अशुभ विचार अवनति और पतन के गर्भ में।

इसलिए विचारों की अवहेलना या उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। उनके महत्त्व को पहचानकर शुभ विचारों को ग्रहण करना चाहिये और अशुभ को त्याग देना चाहिए। यदि आपके विचार स्वस्थ होगें तो आपका स्वास्थ्य स्वयं ही ठीक रहेगा, इसलिए अपने को स्वस्थ महसूस कीजिये और मन में कभी यह बात न आने दीजिये कि आप अस्वस्थ या रोगी हैं। हमेशा यही सोचिये कि आप स्वस्थ हैं और स्वस्थ बने रहेंगे।

स्वास्थ्य की आधारशिला है संतुलन और नियम, जिस व्यक्ति का दैनिक जीवन नियमित नहीं होता, उसका स्वास्थ्य कभी भी ठीक नहीं हो सकता। हमारा शरीर एक यंत्र की तरह है, किंतु यह यंत्र प्राणवान् है। इसलिए इसे नियम से रखना आवश्यक है। काम करने, भोजन करने, सोने, जागने आदि के सभी काम नियम पूर्वक करने वाला व्यक्ति शायद ही कभी रोगी होता हो।

जीवन में संतुलन की महत्ता का अनुमान इसी बात से लग जाता है कि हमारे शरीर के सभी अंग, एक निश्चित सन्तुलन की स्थिति में ही कार्य करते हैं। जब कभी शरीर का यह संतुलन बिगड जाता है तो शरीर के विभिन्न अंग विधिवत् कार्य नहीं कर पाते और रोगी हो जाता है।

नियमित और संतुलित जीवन व्यक्ति के स्वास्थ्य को कभी नष्ट नहीं होने देता इसलिए अपने जीवन को नियमित और संतुलित रखिये, सफलता, सुख और समृद्धि आपको अपने द्वारे बैठी मिलेगी। (स्वेट मार्टन)

परिच्छेद - 8

स्वास्थ्यप्रद आहार

स्वास्थ्य के लिए आहार-पानी की नितांत आवश्यकता है। नीतिकारों ने कहा है -

जैसे खावे अन्न, वैसे होवे मन। जैसे पीवे पानी, वैसे होवे वाणी।

Our body is what we eat अर्थात् हमरा शरीर उस प्रकार परिणमन करता है; जिस प्रकार हम भोजन करते हैं।

Diet cures more then Doctor आहार का महत्त्व डॉक्टर से भी महत्त्वपूर्ण है। इंगलिश में कहावत है - As we eat so we think and as we think so we become.

जिस प्रकार का आहार हम करेंगे उसी प्रकार की विचारधारा उत्पन्न होगी। जिस प्रकार विचार करेंगे उस प्रकार हम बनेंगे। इसलिए जीवन को निरोग, स्वस्थ, सक्रिय, उन्नतशील, सुख-शांतिमय बनाने के लिए योग्य आहार-पानी की नितांत आवश्यकता है। तामसिक आहार से तामसिक मनोभाव उत्पन्न होता है। राजसिक भोजन से जीवन राजसिकमय हो जाता है तथा सात्विक आहार से जीवन सात्विकमय हो जाता है। आहारानुकूल विचार उत्पन्न होता है। विचारानुसार आचार तथा उच्चार (वाणी प्रयोग) अनुप्रेरित होते हैं। प्राचीन काल में लोग प्रकृति के गोद में पालित-पोषित होने के साथ-साथ शुद्ध प्राकृतिक आहार-पानी का सेवन करते थे। जिससे उनका आरोग्य प्राकृतिक स्वास्थ्य सम्पन्न रहता था। वर्तमाान भौतिक युग में प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष और संग्राम के साथ-साथ प्रकृति विरोध, अप्राकृतिक (कृत्रिम) आहार-पानी के सेवन से आरोग्य भी प्राकृतिक स्वास्थ्य के विरुद्ध संघर्ष एवं तनावपूर्ण है। सुदैवात् कुछ प्राच्य एवं पाश्चात्य स्वास्थ्य विदों ने प्राचीन महर्षियों द्वारा प्रतिपादित मार्ग का शोध-बोध, आधुनिक परिप्रेक्ष में करके प्राकृतिक चिकित्सा, जो कि विशेष करके शुद्ध आहार-विहार-विचार के ऊपर निर्भर है, प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। निम्न में प्राचीन चिकित्सा विदों के द्वारा वर्णित स्वास्थ्यप्रद आहार-पानी का वर्णन कर रहे हैं।

पेयापेय पानी के लक्षण :-

व्यपगतरसगंधस्वच्छमत्यंशीतं । लघुतममतिमेध्यं पेयमेतद्धि तोयम्॥
गिरिगहनकुदेशोत्पन्नपत्रादिजुष्टं। परिहृतमितिचोक्तं दोषजालैरूपेतम्॥ 8

जिस जल में रस और गंध नहीं है, स्वच्छ है एवं अत्यतं शीत है, हल्का है, बुद्धि प्रबोधक है, वह जल पीने योग्य है और बडे पहाड, जंगल, खोटा स्थान इत्यादियों से युक्त जल दोष युक्त है, उसे नहीं पीना चाहिए।

जल का स्पर्श व रूप दोष :-

खरतरमिह सोष्णं पिच्छिलं दंतचर्व्यं। सुविदित जलसंस्थं स्पर्शदोषप्रसिद्धम्॥
बहलमलकलंकं शैवालात्यतंकृष्णं। भवति हि जलरूपे दोष एवं प्रतीतः॥ 9

जो पानी द्रवीभूत न हो, उष्ण हो, दात से चबाने में आता हो, चिकना हो वह जल स्पर्श दोष से दूषित समझना चाहिए एवं अत्यंत मल से कलंकित रहना, शैवाल से युक्त होने से काला होना यह जल के रूप में दोष है। (क. का. 5 परि. पृ. 70)

जल का गंध, रस व वीर्य दोष :-

भवति ही जलदोषोऽनिष्टगंधस्सुगंधो। विदितरसविशेषोप्येष दोषो रसाख्यः॥
यदुपहतमतीवाध्मानशूलप्रेसकान् । तृषमपिजनयेत्तत् वीर्यदोषभिपाकं ॥ 10

जल में दुर्गंध रहना यह जलगत गंध दोष है कोई विशेष रस रहना (मालूम पडना) यह जनगत रस दोष है। जिस जल को थोडा पीने पर आध्मान (अफराना), शूल, जुकाम आदि को पैदा करता है एवं प्यास को भी बढाता है, वह वीर्य दोष से युक्त जानना चाहिए।

जल का पाक दोष :-

यदपि न खलु पीतं पाकमायाति शीघ्रं। भवति च सहसा विष्टंभिपाकाख्य दोषः।।
पुनरथकथितास्तु व्यापदः षड्विधास्सत्। प्रशमनमिह सम्यक्कथ्यते तोयवासः॥ 11

कल्याण कारक पञ्चम परिच्छेद

जो जल पीने पर शीघ्र पचन नहीं होता और सहसा मलरोध होता है, यह जल का पाक नामक दोष है। ऊपर जल में जो छः प्रकार के दोष बतलाये गये उनको उपशमन करने के जो उपाय है उनको यहाँ पर कहेंगे।

जल शुद्धि करने की पद्धति :-

वैज्ञानिक सिद्ध सिद्धान्त यह है कि एक जल बिंदु में 36450 जीव रहते हैं परंतु सूक्ष्म तत्त्ववेत्ता भगवान् महावीर ने केवल ज्ञान से परीक्षण करके बहुत प्राचीन काल में बताया था कि एक जल बिंदु में असंख्यात त्रस जीव वास करते हैं। यदि योग्य पद्धति के अनुसार पानी को छानकर व्यवहार में नहीं लायेंगे तब असंख्यात, अनन्त जीवों का हनन हो जायेंगा। जिससे उनका वध होने के साथ-साथ उन जिवों के कारण विभिन्न रोग उत्पन्न होंगे। इसलिए पररक्षा के साथ-साथ आत्मरक्षा के लिए यथार्थ

विधि से पानी छानकर नित्य व्यवहार कार्यों में प्रयोग में लना चाहिए।

जिस जलाशय से जल लाना है वहाँ से एक स्वच्छ पात्र से जल निकालना चाहिए। उसके अनन्तर दूसरे स्वच्छ पात्र के ऊपर पानी छानने के लिए कपडा ढाँक कर उस पानी को डालना चाहिए। छानने योग्य वस्त्र सफेद, नवीन, मोटा, खद्दर (खादी) होना चाहिए। उसको दोहरा करके जिस पात्र में पानी छानना हो उसके मुँह के ऊपर पूर्णरूप से ढक देना चाहिए। यदि वस्त्र सफेद नहीं होगा किंतु रंगीन हो तब रंग में जो रसायनिक द्रव्य है उससे जीव की सुरक्षा पूर्णरूप से नहीं हो सकती है तथा आरोग्य के लिए क्षतिकारक हो सकता है। व्यवहार में लिया गया वस्त्र दूषित हो जाता है, पतले वस्त्र में पानी छानने से पूर्णरूप से जीव छनकर ऊपर नहीं रहेंगे इसलिए मोटा खादी वस्त्र लेना चाहिये। इस वस्त्र को दोहरा करके सूर्य की तरफ रखने पर सूर्य किरण दिखायी नहीं दे इस तरह मोटा होना चाहिए।

उपरोक्त विधि से पानी छानने के बाद कपडे के ऊपर सूक्ष्म जीव रह जाते हैं। छानने के बाद तुरंत छन्ना (कपडा) को दूसरे पात्र में उल्टा करके रखकर छना पानी उस कपडे के ऊपर धीरे से डालना चाहिए जिससे छने हुये सूक्ष्म जीव सुरक्षित रूप से उस पात्र में चले जायेंगे। उन जीवों का सुरक्षा के लिए जिस जलाशय से पानी निकालते हो उस जलाशय में सावधानीपूर्वक जीवों को पहूँचा देना चाहिए।

इसी प्रकार शुद्ध जल की मर्यादा अन्तर्मुहूर्त (48 मिनट के भीतर) की होती है। 48 मिनट के बाद पुनः सूक्ष्म त्रसजीव उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए मर्यादा के बाहर उस पानी को पुनः प्रयोग में लाने के लिए छानना चाहिए। यदि मर्यादा को अधिक बढाना हो तो निम्नोक्त विधि से बढा सकते हैं - लौंग, इलायची, जायफल आदि पीसकर या चुर्ण बनाकर उस पानी में डालना चाहिये जिससे पानी का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाए। तब उस पानी की मर्यादा छः घडी हो जायेगी। सामान्य रूप से गर्म करने से पानी की मर्यादा भी छः घडी होगी। पूर्ण रूप से उबालने के बाद पानी की मर्यादा 24 घण्टे हो जायेगी। गर्म किया हुआ पानी मर्यादा के बाहर खाने-पीने में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जल शुद्धि विधान :-

कतकफलनिघृष्टं वातसीपिष्टयुक्तं। दहनमुखविपक्वं तप्तलोहाभितप्तं।।
दिनकरकरतप्तं चन्द्रपादैर्निशीथे। परिकालितमनेकैश्शोधितं गालितं तत्।। 12

जलजदललवंगीशीरसच्चंदनाद्यैर्हिमकरतुटिकुष्टप्रस्फुरन्नागपुष्पैः।
सुरभिवकुलजातीमल्लिकापाटलीभीः। सलवितलवलीनीलोत्पलैश्चोचचोरैः।। 13

अभिनवसहकारैश्चंपकाद्यैरनेकै। स्सुरुचिरवगंधैर्मृत्कपालैस्तथान्यैः।।
असनखदिरसारैर्वासितं तोयमेतच्छमयति सहसा संतापतृष्णादिदोषान्।। 14

कल्याण कारक पञ्चम परिच्छेद

कतकफल (निर्मली बीज) व अतसी का आटा डालना, अग्नि से तपाना, तपे हुए लोहे को बुझाकर गरम करना, सूर्यकिरण में रखना, रात्रि में चांदनी में रखना आदि नाना प्रकार के उपायों से शोधन किया गया तथा वस्त्र वगैरह से छना हुआ, कमल पत्र, लौंग, खस, चंदन, कपुर, छोटी इलायची, कूट, श्रेष्ठ नागपुष्प, पाढन के फूल, जायफल, हरपाखेडी, दाल-चीनी, शरीभेद, नवीन व अत्यंत सुगंधियुक्त आम का फूल, चम्पा आदि अनेक सुगंधियुक्त पुष्पों से तथा मृत्कपालक (मृष्टखर्पर), विजयसार, खैरसार आदिकों से सुगंध किया गया जल शीघ्र ही ताप, तृष्णा आदि दोषों का शमन करता है।

मांसाहारी झगडालू होते हैं :-

लक्ष्मीबाई शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय के तीन शारीरिक शिक्षा विज्ञानियों- जसराज सिंह, बी.के. दास और राजेंद्र सिंह ने संयुक्त रूप से किये गये अनुसंधान में इस बात को उजागर किया है कि मांसाहारी व्यक्ति उग्र स्वभाव एवं झगडालू प्रवृत्ति के होते हैं। उनकी खोज का विषय था - ''खान-पान का मनुष्य की प्रवृत्ति पर प्रभाव।'' इस दौरान ग्वालियर सैन्ट्रल जेल के करीब 400 कैदियों का अध्ययन किया गया और पाया गया कि मांसाहारी अधिकतर गर्ममिजाज एवं झगडालू प्रवृत्ति के होते हैं जब कि शाकाहारी सामान्यतः नम्र और सहनशील पाये जाते हैं। 400 बंदियों में से 240 बंदी शाकाहारी थे और इनमें 84% का स्वभाव शांत और विनम्र पाया गया। अध्ययन में पशुओं के स्वभाव का हवाला भी दिया गया। इनके अनुसार शाकाहारी पशु, चाहे वह हाथी हो या हिरण, स्वभाव से नम्र होते हैं लेकिन मांसाहारी पशु चाहे वह शेर हो या कुत्ता इतने उग्र होते हैं कि भोजन न मिलने पर अपने बच्चों तक को खा जाते हैं।

इन वैज्ञानिकों का कहना है कि खाने में लिये गये विभिन्न पोषक-तत्त्व, रक्त में प्रवाहित होकर अपना प्रभाव मस्तिष्क पर, जहाँ से मनुष्य की प्रवृत्तियाँ जन्म लेती है, वहाँ डालते हैं। भावनगर राष्ट्रीय खेल संस्थान के प्रमुख अनुसंधान अधिकारी, डॉ. एम.एस. मल्होत्रा ने इस बात को गलत बताया है कि खिलाडियों के लिए शाकाहारी भोजन के बजाय मांसाहारी भोजन अधिक गर्मी और शक्ति देता है।

डॉ. मल्होत्रा ने यहाँ एक गोष्ठी में खेल और चिकित्सा सम्बन्धी व्याख्यान में

कहा है कि शाकाहार ही खिलाडियों के लिए लाभदायक है। शाकाहार में कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा अधिक होती है। उन्होंने खिलाडी की इस धारणा को गलत बताया है कि अधिक प्रोटीन से ज्यादा शक्ति मिलती है बल्कि उन्होंने तो यह बताया कि इसके अधिक सेवन से खिलाडियों के गुर्दे और यकृत (लीवर) खराब हो जाते हैं। डॉ. मल्होत्रा ने खिलाडियों को चेतावनी दी है कि जो भी खिलाडी दवाओं और नशीले पदार्थों का सेवन करते हो, हो सकता है कि इनके द्वारा उनमें कुछ समय के लिए उत्तेजना पैदा हो जाय लेकिन बाद में ये दवायें ठीक न होने वाली बीमारियों का कारण बन जाती है।

डॉ. मल्होत्रा ने कहा है कि खिलाडियों को अपना स्वास्थ्य तथा खेल जीवन बरकरार रखने के लिए आवश्यक है कि वे दूध, हरी सब्जियाँ, फल जैसे शाकाहारी भोजन ग्रहण करें।

मांसाहारी लोग जो भी कहे, किंतु हमें यह मानना पडेगा कि कम से कम इस देश के स्वाभाविक आहार तो अन्न, दूध, फल और शाक ही है, मांस में पौष्टिक तत्त्व आंशिक मात्रा में होते हैं और उनसे पुष्टि के साथ-साथ उत्तेजना भी मिलती है, इसमें संदेह नहीं परंतु उसमें जीवनीय शक्ति-आयुर्बल बढाने की क्षमता नहीं होती। मनुष्य ही नहीं बल्कि निरामिष पशु-पक्षी भी मांसाहारी पशु-पक्षियों से अधिक दीर्घजीवी होते है। पशुओं में हाथी और पक्षियों में तोता सर्वाधिक दीर्घजीवी पाये जाते है और दोनों ही मांसाहारी नहीं होते हैं। अन्य जीवों की अपेक्षा दोनों बुद्धिमान भी बहुत होते हैं। मनुष्यों में अन्नजीवी व्यक्ति बुद्धि सामर्थ्य और शरीर संबल में मांसाहारियों से किसी प्रकार निर्बल नहीं होते। यह सब गांधी जी और जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के जीवन से भी प्रतीत होता है। स्वच्छता की दृष्टि से भी निरामिष भोजन अधिक हितकर होता है।

मस्तिष्क पर आहार का प्रभाव :-

आहार का प्रभाव मस्तिष्क पर कैसा पडता है इसको ठीक-ठीक जानलेना चाहिये क्योंकि मस्तिष्क द्वारा ही शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन होता है। भोजन का क्षणिक और स्थायी प्रभाव मस्तिष्क पर तत्काल पडता है जैसा कि मद्य सेवन के प्रभाव से समझा जा सकता है।

रुसी डॉ. ई. पोदोलस्की ने इस विषय में विशेष रूप से अध्ययन करके कुछ महत्त्वपूर्ण बाते प्रकाशित की है। उनका कहना है कि भक्षित पदार्थों में जो खनिज तत्त्व निकलते हैं वे मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव डालते हैं। स्वस्थ मस्तिष्क के रक्त में उनका सम्मिश्रण ठीक परिणाम में मिलता है परंतु अस्वस्थ मस्तिष्क में अधिक या न्यून मात्रा

में मिलते हैं। ज्यों-ज्यों वे रासायनिक तत्त्व अपनी स्वाभाविक मात्रा से अधिक या कम होते हैं त्यों-त्यों मनुष्य की चित्तवृत्ति और बुद्धि शक्ति में अन्तर पडता है और प्रायः मनुष्य का सारा व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। वैज्ञानिक परीक्षण करने पर कई पागलों के मस्तिष्क में शर्करा अंश (Sugar factor) आवश्यकता से अधिक पाया गया है। बहुत से पागलों की परीक्षासे ज्ञात हुआ है कि उनके मस्तिष्क में कैल्शियम और फॉस्फरस अत्याधिक मात्रा में थे। कई ऐसे रोगियों की परीक्षा की गयी जिनकी विचार शक्ति ही लुप्त हो गयी थी और पता चला कि उनके रक्त में चीनी का तत्त्वांश बहुत कम था। गंधक और लोह-तत्त्वों की कमी से अनेक मानसिक क्रियायें स्तब्ध होती देखी गयी है और कई प्रकार के मानसिक रोग इनकी अधिकता के कारण उत्पन्न होते पाये गये हैं क्योंकि गंधक लोह-तत्त्वों के आधिक्य से मस्तिष्क उत्तेजित एवं विक्षिप्त हो जाता है।

अधिक अम्ल अथवा क्षार विशिष्ट पदार्थों से मस्तिष्क में अम्ल-रस का प्राचुर्य मिलता है। अपस्मार, मानसिक व्याकुलता और संज्ञाहीनता के विकार प्रायः क्षार द्रव्यों की प्रचुरता से उत्पन्न होते हैं। कैल्शियम और फॉस्फरस दोनों उचित मात्रा में मज्जातंतुओं को बल, तेज और स्फूर्ति देते हैं। यही कम हो जाते हैं तो आलस्य और जडता के लक्षण प्रकट होते हैं और उन्हीं के बढने से विचारों में चञ्चलता और झुंझलाहट होती है तथा विकलता का अनुभव होता है। लोह तत्त्व से विचारों में दृढता आती है और मस्तिष्क पुष्ट होता है। बच्चों के ज्ञान तंतुओं में अवस्था के अनुसार लोहांश वयस्क के अपेक्षा कम होता है इसीलिए वे चञ्चल और विवेकहीन होते हैं। ज्यों-ज्यों आहार के द्वारा वे लोह अंश प्राप्त करते हैं त्यों-त्यों उनका मस्तिष्क पोषित होता है।

हरी शाक-भाजी और फल खाने से मन क्यों साफ हो जाता है यह ऊपर के विवरण से समझा जा सकता है। उनमें खनिज अंश प्रचुर मात्रा में होता है जो मस्तिष्क के अनुकूल पडता है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि खनिज अन्य द्रव्यों के भाँति पाचन-क्रिया से रस के रूप में परिवर्तित होकर रक्त में नहीं मिलते बल्कि सीधे रक्त में मिश्रीत हो जाते हैं इसलिए उनका प्रभाव शीघ्र ही दिखायी पडता है।

इस प्रसंग में दो-एक अन्य जानने योग्य बातों का उल्लेख हम इसलिए करेंगे कि उनके विषय में लोगों के मन में कुछ भ्रम है। पहली बात तो यह है कि ज्ञानोत्कर्ष के लिए कौनसा यौगिक परमावश्यक है इसका पता अभी तक ठीक-ठीक नहीं चला है।

"What compounds are especially concerned in intellectual activity is not know. The belief that fish is especially rich in Phosphoros and valuable as a brain food has no foundation in observed fact." - **ENCYCLOPEDIA BRITANNICA**

दूसरी बात चावल के संबंध में है। चावल मस्तिष्क पोषक होता है। विश्व प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डॉ. एन.आर. धर ने 2 अगस्त 1948 को कलकत्ते में एक भाषण दिया था। उसमें उन्होंने बताया कि प्रोटीन में एमीनो एसिड नामक जो पदार्थ होता है, उनके दो भेद होते हैं- 1) विशिष्ट, 2) सामान्य। विशिष्ट प्रकार का द्रव्य शरीर और मस्तिष्क के विकास और पोषण के लिए नितांत आवश्यक होता है। दूध, मछली और अंडे आदि के प्रोटीन में एमिनो एसिड के विशिष्ट अंश ही अधिक होता है। गेहूँ में यदि चावल की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है परंतु चावल के प्रोटीन में एमीनो एसिड का विशिष्ट भाग गेहूँ की अपेक्षा अधिक होता है। धर महोदय के मत में पूर्वीय देशों के बौद्धिक विकास का प्रधान कारण चावल में प्राप्त होने वाला उच्च कोटि का प्रोटीन ही है और इसलिए इधर चावल की खेती विशेष रूप से की जाती है। चावल से भडकने वाले लोग चावल खाकर देखे, संभव है ज्ञान तीव्र होने पर उनको पता चले कि चावल के विषय में जो भ्रम था वह चावल न खाने के कारण ही था।

आहार के प्रभाव के संबंध में यह बात सर्वमान्य है कि उसके अनुसार शरीर बनता है। मस्तिष्क के साथ ही चरित्र और स्वभाव भी बनता है। क्यों स्वभाव, चरित्र एवं मस्तिष्क शरीर से ही संबंध रखते हैं। सात्विक आहार की महिमा प्राचीन विद्वानों ने इसलिए गायी है। इसमें संदेह नहीं की जो जैसा खाता है, वैसा ही बन जाता है। किसी संस्कृत नीतिकार ने कहा भी है की -

''जिस प्रकार दीपक अन्धकार की कालिमा का भक्षण करके कज्जल की कालिमा ही पैदा करता है उसी प्रकार मनुष्य भी जैसा खाता है उसी प्रकार का अपना ज्ञान प्रकट करता है। ''

इतिहास पुराण से ज्ञात होता है कि हनुमान, भीम, अर्जुन, भीष्म, कृष्ण, बलदेव तथा भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर से लेकर सब शुद्ध शाकाहारी थे। करूणा के अवतार भगवान बुद्ध तथा भरत आदि चक्रवर्ती राजा भी निरामिष भोजन ही ग्रहण करते थे। इसमें सन्देह नहीं है कि ये सभी महापुरूष शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से शक्ति की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। इतिहास प्रसिद्ध भारत के

अन्तिम स्वाधीन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य अहिंसा प्रदान जैन धर्म का पुजारी होने के कारण शुद्ध शाकाहारी थे तो भी दिग्विजयी सिकन्दर बादशाह के सेनापति सेल्युकस को पूर्णरूप से परास्त कर उससे काबुल और कांधार (गांधार) राज्य छीन लिए थे। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती शुद्ध शाकाहारी होने के कारण तथा ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने के कारण महान् शक्तिशाली थे। वे अपनी शक्ति से अश्ववाही रथ को खींचकर स्थिर करते थे। इसी प्रकार विभिन्न पौराणिक, ऐतिहासिक और सत्य उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि शाकाहारी जीवों का प्राकृतिक आहार है। शाकाहार से दीर्घायु व शान्त स्वरूप की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि प्राचीनकालीन मनुष्य तथा पशु शुद्ध शाकाहारी थे। वे शुद्ध शाकाहारी होने के कारण अत्यंत दीर्घायु होते थे। उनकी आयु उत्कृष्ट रूप से तीन पल्य थी। यदि आधुनिक गाणितिक सिद्धान्त के अनुसार कहें तो यह प्रायः असंख्यात करोड -अरब वर्ष है। उनके शरीर की ऊँचाई उत्कृष्ट रूप से छः मील थी। उन मनुष्यों की शक्ति 9000 हाथियों के समान होती थी। वे लोग सम्पूर्ण जीवन पूर्णरूप से निरोग ही रहते थे। यह सब उनके शाकाहारी होने का परिणाम भी था। इसलिए हम कह सकते हैं कि यदि हम निरोगी बने रहना चाहते हैं तो हमें शुद्ध शाकाहार को अपने जीवन में विशेष रूप से स्थान देना होगा।

उपरोक्त दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर के प्राच्य एवं पाश्चात्य के कुछ महामनीषियों ने शाकाहार की प्रशंसा एवं मांसाहार की निंदा की है। एक वैदेशिक चिंतक बताते हैं कि -

Animal food for those who will fight and die, and vegetable food for those. who will live and think.

मांसाहार भोजन उनके लिए है जो परस्पर संघर्ष करेंगे, युद्ध करेंगे एवं मरेंगे। शाकाहार भोजन उनके लिए है जो जीवित रहेंगे एवं विचार करेंगे। अर्थात् मांसाहार से तामसिक प्रवृत्ति बढती है जिससे मांसाहारी प्रत्येक समय में दूषित भाव से आक्रांत होकर कलह, संघर्ष, युद्ध, वैमनस्य आदि करता है और परिणामस्वरूप मृत्यु को वरण करता है। शकाहार सात्विक आहार होने के कारण, शाकाहारी का विचार सात्विक होता है जिससे उसका जीवन प्रेममय, शांतमय, सुखमय हो जाता है।

विदेश में कुछ वैज्ञानिकों ने नवयुवक एवं नवयुवतियों की परीक्षा करने के लिए मांस, मद्यादि का सेवन करवाये। कुछ दिन बाद युवक एवं युवतियों ने बताया कि मांसाहारादि के पहले जो निर्मल भाव था वह निर्मल मनोभाव मांसाहार के बाद नहीं

था। मांसाहार के साथ-साथ हिंसा मनोभाव, वैरत्व मनोभाव, कामुकता मनोभाव, दूषित मनोभाव दिनोंदिन बढ रहा है। इससे सिद्ध होता है कि मांस आदि तामसिक आहार से मन भी अशुद्ध तामसिक हो जाता है। मन की पवित्रता नहीं रहती है।

रक्त मात्र प्रवाहेण स्त्री निंद्या जायते स्फुटं।
द्विधातुजं पुनर्मांस पवित्र जायते कथं।।

स्त्रियों के ऋतुस्नान के समय में केवल रक्त प्रवाहित होने के कारण ऋतुमती स्त्री अपवित्र हो जाती है परंतु मांस तो रज (रक्त) और वीर्य दोनों धातु मिलने से तैयार होता है तब मांस कैसे पवित्र हो सकता है ?

जो रक्त लगे कापडे, जामा होवे पलीत ।
जो रक्त पीवे मानुषा, तिन क्यों निर्मलचित्त।।

यदि रक्त कपडे में लगने से कपडा अस्वच्छ (अशुद्ध) हो जाता है तब जो रक्त पीता है उसका मन रूपी कपडा कैसे पवित्र हो सकता है अर्थात् कभी भी किसी भी प्रकार से शुद्ध नहीं हो सकता है।

न मांस भक्षणै दोषो, न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषां भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफल ।। मनुस्मृति

मांस खाने में, मद्यपान में तथा मैथुन सेवन करने में दोष नहीं है; इसी प्रकार विचार करके अज्ञानी जीव मांसभक्षण, मद्यपान तथा मैथुन में प्रवृत्ति करते हैं परंतु जो ज्ञानी, विवेकी मांसभक्षण, मद्यपान तथा मैथुन से निवृत्त होते हैं उनको महाफल प्राप्त होता है।

शाकाहार में जो सात्विक तत्त्व है उस तत्त्व के माध्यम से शाकाहारी निरोगी, शांत परिणामी, निर्भीक, गंभीर, सहिष्णु, कार्यदक्ष आदि गुणों से अलंकृत हो जाता है। अभी तक मनुष्य समाज के लिए जो उपकार पशु समाज ने किया है उनमें अधिकांश पशु शाकाहारी ही है। मांसाहारी पशु स्वजाति में सुख-शांति, प्रेम-मैत्री, परस्पर सहकार और संगठन आदि रूप में भी नहीं रह पाते हैं। मांसाहारी पशु यहाँ तक कि अपनी संतान का भी पालन-पोषण ठीक से नहीं करता है और संतानों को ही खा जाता है परंतु शाकाहारी पशु यथा - गाय, बैल, हाथी, घोडा, बकरा-बकरी आदि अपनी संतान की सुरक्षा करते हैं और अपने समाज से भिन्न मनुष्य समाज का भी उपकार करते हैं। युद्ध क्षेत्र में, कृषि क्षेत्र में, यान-वाहन के लिए शाकाहारी प्राणियों का ही उपयोग किया जाता है। शाकाहारी पशु जो कठिन परिश्रम कर सकता है उस परिश्रम को कोई भी शक्तिशाली मांसाहारी पशु नहीं कर सकता है। शाकाहारी प्राणी में दया, प्रेम,

करुणा, उपकार भावना के साथ-साथ शक्ति, साहस, कष्टसहिष्णुता आदि गुण अधिक होते हैं। हाथी, घोडा, अरण्यमहिषि, गेंडा, चिम्पांजी, गोरिल्ला आदि में जो शक्ति है वह शक्ति किसी भी मांसाहारी प्राणी में नहीं हो सकती। केवल मांसाहारी प्राणी में क्रूरता होने के कारण साधारण प्राणी डरते हैं और अधिक शक्ति उसमें हैं यह मानते हैं। जैसे एक साँप में हाथी के समान शक्ति न होते हुए भी सर्प क्रूर, दुष्ट होने के कारण सर्प से भयभीत होते हैं परंतु हाथी शक्तिशाली होते हुये भी शांत परिणामी होने से हाथी से डरते नहीं है। इसी प्रकार जो शाकाहारी मनुष्य होते हैं उनमें रोग प्रतिरोध की शक्ति, शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति, सहिष्णुता शक्ति, कार्यक्षमता, गाम्भीर्य, उदारता, प्रेम, मैत्री आदि गुण मांसाहारी मनुष्य से अधिक पाये जाते हैं।

उदाहरण :-

महाराष्ट्र के बडौदा के महाराजा स्वयं वीर और मल्लविद्या में धुरंदर थे। उन्होंने एक बार परीक्षा के लिए दो सौ मल्ल नियुक्त किये। उनमें सौ मल्लों (पहलवान्) को शाकाहार दिया, अन्य सौ मल्लों को मांसाहार दिया, कुछ दिनों के उपरांत परीक्षा के लिए शाकाहारी तथा मांसाहारी मल्ल के बीच में प्रतियोगिता रखी। प्रतियोगिता में मांसाहारी मल्ल थक गये तथा परास्त हुए, शाकाहारी मल्ल जययुक्त हुए। अभी भी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अनेक मल्ल एवं खिलाडी शुद्ध शाकाहारी ही है। मांसाहारी खिलाडी जल्दी थक जाते हैं और शाकाहारी खिलाडी जल्दी थकते नहीं और शरीर में स्फूर्ति रहती है। इसलिए वर्तमान देश-विदेश के खिलाडी पौष्टिक, शक्तिशाली एवं ऊर्जा देने वाला शाकाहार ही भोजन के लिए अपनाते हैं।

अत्यंत प्राचीन विश्व इतिहास का जब अवलोकन करेंगे तब स्पष्ट अवगत हो जायेगा कि अत्यंत प्राचीन काल में मनुष्य शकाहारी थे या उसके साथ-साथ समस्त पशु समाज यहाँ तक कि सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि भी शुद्ध शाकाहारी ही थे। इस विषय का प्रतिपादन ''आदर्श विचार-आहार-विहार'' में किया गया है तो भी पाठकों के लिए कुछ वर्णन यहाँ कर रहा हूँ।

अक्खरआलेक्खेसु गणिदे गन्धव्वसिप्पपहुदीसु ।
तं चउसट्ठिकलासु होंति सहावेणणिउणयरा।। 385 - ति.प. अ. 4

वे अक्षर, चित्र, गणित, गंधर्व और शिल्प इत्यादि चौंसठ कलाओं में स्वभाव से ही अतिशय निपुण होते हैं।

ते सव्वे वरजुगला अण्णोण्णुप्पण्णपेम्मसंमूढां।
जम्हा तम्हा तेसुं सावयवदसंजमो णत्थि।। 386

क्योंकि ये सब उत्तम युगल पारस्परिक प्रेम में अत्यंत मुग्ध रहा करते हैं, इसलिए उनके श्रावक के व्रत और संयम नहीं होते हैं।

कोइलमहुरालापा किण्णरकण्ठा हवंति ते जुगला।
कुलजादिभेदहीणा सुहसत्ता चत्तदारिद्दा ॥ 387

ये नर-नारी युगल कोयल के समान मधुरभाषी, किन्नर के समान कण्ठ वाले, कुल-जाति के भेद से रहित, सुख में आसक्त और दारिद्र से रहित होते हैं।

तिरिया भागखिदीये जुगला-जुगला हवंति वरवण्णा।
सरला मंदकसाया णाणाविहजादिसंजुत्त ॥ 388

भोग भूमि में उत्तम वर्ण विशिष्ट, सरल, मंदकषायी और नाना प्रकार की जातियों वाले तिर्यञ्च जीव युगल-युगल रूप में रहते हैं।

गोकेसरिकरिमयरा सूवरसारंगरोज्झमहिसवया ।
वाणरगवयतरच्छा, वग्घसिगालच्छभल्लाय ॥ 389
कुक्कुडकोइलकीरा पाराबदरायहंसकोरंडा ।
वककोककोंचकिंजकपहुदीओ होंति अण्णे वि॥ 390

भोग भूमि में गाय, सिंह, हाथी, मगर, शूकर, सांरग, रोझ (ऋश्य), भैंस, वृक (भेडिया), बंदर, गवय, तेंदुआ, व्याघ्र, शृगाल, रीछ, भालू, मुर्गा, कोयल, तोता, कबूतर, राजहंस, कोरंड, काक, क्रौच, कजंक तथा और भी तिर्यञ्च होते हैं।

जह मणुवाणं भोगा तह तिरियाणं हुवंति एदाणं।
णियणियजोग्गत्तेणं फकंदतणंकुरादीणि ॥ 392

वहाँ जिस प्रकार मनुष्यों के भोग होते हैं उसी प्रकार इन तिर्यञ्चों के भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार फल, कंद, तृण व अङ्कुरादि रूप भोग होते हैं।

वग्घादि भूमिचरा वायसपहुदी य खेयरा तिरिया ।
मंसाहारेण विणा भुंजते सुरतरूण महुरफलं॥ 392

वहाँ व्याघ्रादिक भूमिचर और काकप्रभृति नभचर तिर्यञ्च मांसाहार के बिना कल्पवृक्षों का मधुर फल भोगते हैं।

हरिणादिमतणचरा तह भोगमहीए तणाणि दिव्याणि।
भुंजति जुगलाजुगला उदयदिणेसप्पहा सव्वे॥ 393

तथा भोग भूमि में उदयकालीन सूर्य के समान प्रभा वाले समस्त हरिणादिक तृणजीवी पशुओं के युगल दिव्य तृणों का भक्षण करते हैं।

परिच्छेद - 9

शाकाहार चिकित्सा :-

जीवों को शरीर पोषण के लिए शरीर की रक्षा के लिए कार्य करने योग्य ऊर्जा की प्राप्ति के लिए तथा जीवन-शक्ति को स्थिर रखने के लिए, आहार की नितांत आवश्यकता है। उपरोक्त कारणों के साथ-साथ शुद्ध तथा अशुद्ध अचार-विचार भी शुद्ध तथा अशुद्ध आहार के ऊपर निर्भर करता है। मांस, मछली, अण्डा, मद्य नशीली चीजें इत्यादि तामसिक आहार के अन्तर्गत आते हैं। तामसिक आहार करने से मन भी तामसिक (अंधकारपूर्ण) हो जाता है। जिस प्रकार अंधाकार में वस्तुओं को यथार्थ रूप से देख नहीं पाते, उसी प्रकार तामसिक व्यक्ति वस्तु स्वरूप को, सत्य को, आचार-विचार को, नीति-धर्म को, ठीक-ठीक से जान नहीं पाता है। जिस प्रकार प्रकाश होते हुए भी अंधा, तामसिक रोग (जिसे अंधकार दिखाई देता है) वाले व्यक्ति को यथार्थ वस्तु का ज्ञान नहीं होता है, उसी प्रकार तामसिक व्यक्ति सत्य स्वरूप को देख नहीं पाता। यथार्थ ज्ञान विचार के अभाव से आचार भी यथार्थ नहीं होता अर्थात् आचार-विचार से अनेक शारीरिक रोग, मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रत्येक काल में, प्रत्येक देश के महापुरुष, शुद्ध शाकाहार का प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ, स्वयं भी शाकाहारी बने थे। धर्म में शाकाहार को धर्म का एक अनिवार्य अङ्ग भी माना गया है। बिना शुद्ध शाकाहार के कोई शुद्ध धर्मात्मा बनने का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। इस धार्मिक दृष्टिकोण में महान्, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक, आरोग्य संबंधी सत्य-तथ्य निहित हैं। शुद्ध शाकाहार से शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। शुद्ध शाकाहार से शुद्ध विचार, भावधारा की वृद्धि होने से मानसिक दृढता, उदारता, प्रफुल्लता आदि की वृद्धि होती है जिससे मानसिक शक्ति बढती है। मानसिक शक्ति बढने से मानसिक रोग निरोध हो जाता है। इससे अनेक शारीरिक रोग भी स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्ति के साथ-साथ नैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रीय उन्नति हो सकती है।

सौभाग्य की बात यह है कि जिस शाकाहार का उपहास, अवहेलना पहले हो रही थी, आज पाश्चात्य वैज्ञानिकों के शोध-बोध से शाकाहार का महत्त्व सबको अवगत हुआ जिससे देश-विदेश में शाकाहार का प्रचार-प्रसार दिन दूना रात चौगुना होने के साथ-साथ अनेक शाकाहारी संस्था, संगठन का निर्माण हो रहा है, निर्माण

होगा। शकाहार का महत्त्व धार्मिक दृष्टिकोण से इसी पुस्तक में आगे वर्णित किया जायेगा। परंतु यहाँ पर कुछ वैज्ञानिक एवं डॉक्टरी दृष्टिकोण से कतिपय डॉक्टर एवं वैज्ञानिकों के मनोभाव के उद्गार दे रहा हूँ।

आज सब हम इस वैज्ञानिक युग से गुजर रहे हैं तब हमारे सामने यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न आता है कि हम स्वस्थ कैसे हो ? हम देखते हैं कि पशु-पक्षी, जीव-जंतु सभी इसी प्राकृतिक वातावरण में अपना जीवन-यापन करते रहते हैं परंतु शायद ही कभी बीमार पडते हैं। फिर मनुष्य जो कि बुद्धि-विकास में सबसे तेज है, आये दिन बीमार क्यों पडता है ?

मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य के लिए मूलतः आहार, स्वच्छता, व्यायाम, विश्राम एवं रोगों से रक्षा के उपाय अलग है। जिनमें आहार का स्थान सबसे प्रमुख है। मनुष्य भी पशु-पक्षियों प्रकृति का अभिन्न अङ्ग है। जब मनुष्य अप्राकृतिक होगा अर्थात् प्रकृति के सामान्य नियमों से नहीं चलेगा तब समस्या आयेगी और उसका असर उसके स्वास्थ पर पडेगा। पशु-पक्षी, जीव-जंतु जो प्रकृति के नियमों से चलते हैं, वे स्वस्थ जीवन बिताते हैं।

प्राकृतिक नियमों के अनुसार मनुष्य की रचना शाकाहारी भोजन के लिए ही है क्योंकि आप देखेंगे कि जितने भी मांसाहारी हैं उनके दाँत नुकीले, पैने एवं फाडने वाले अधिक प्रहार करते हैं जिससे वह मांस फाडकर खाते हैं जब कि मनुष्य के चबाने वाले दाँत अधिक विकसित होते हैं जिससे वह चबाकर खाता है। सभी मांसाहारी प्राणियों की आँते बहुत छोटी होती है जिससे मांस बहुत देर तक उनकी आँतों में नहीं ठहरता, जब कि मनुष्य की आँत आठ मीटर की, अत्याधिक लंबी होती है। मांस उसमें अधिक देर रूकने के कारण कई प्रकार के विषैले पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं जो कि आँतों के कैन्सर के लिए उत्तरदायी होते हैं।

हमारे हाथ किसी वस्तु को बनाने के लिए या पकडने के लिए बनाये गये हैं न कि मांसाहारी जंतुओं की भाँति नोचने-चीरने-फाडने के लिए। हमारी लार में एमाइलेज होता है। जो कार्बोहायर्डेड की जटिल रचना को पचाने में सहायक होते हैं। यह एन्जाइम मांसाहारी जंतुओं में नहीं पाया जाता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मनुष्य का मुख्य भोजन कार्बोहायर्डेड ही है। मांसाहारी प्राणी में कोलेस्ट्रोल नामक पदार्थ को विसर्जित करने की अधिक शक्ति होती है जब कि मनुष्य में यह क्षमता कम होती है। अतः यदि हम मांस या अंडे अधिक मात्रा में खाये तो हमारे शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा अधिक बढती जाती है, जो कि उच्च रक्तदाब, हार्ट अटैक (दिल का दौरा),

पथरी, एंजाइना, आदि बीमारियों का मुख्य कारण है।

आज अमेरीका जैसे ठंडे देश में जहाँ लगभग 5 करोड लोग शाकाहारी हो चुके हैं तथा सभी विकसित देश- रूस, जापान, मैक्सीको, इंग्लैण्ड, स्विटरजरलैण्ड आदि में आज के वैज्ञानिक युग में इस बात को समझा जा रहा है कि वैज्ञानिक चिकित्सीय दृष्टिकोण से मनुष्य के लिए शाकाहार ही उपयुक्त है।

क्योंकि कुछ वर्षों से यह महसूस किया जाने लगा है कि कैंसर, रोगों की लडने की क्षमता में कमी, आँतों को बीमारियॉ, दिल का दौरा, उच्च रक्त दाब आदि बीमारियों का मुख्य कारण मांसाहार है। फिर हमारा देश अहिंसा एवं पशु प्रेम अपनाने वाले इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में इतना पीछे क्यों हैं? शायद इसका कारण समाज में व्याप्त भ्रान्तियों और पूर्ण जानकारी का अभाव है।

कुछ वैज्ञानिक तथ्य इस प्रकार है- मांसाहारी व्यक्तियों में कैंसर शाकाहारियों की अपेक्षा अधिक होता है। बवासीर, कब्ज, हायरस, हर्निया, खूनी घातक पेचिस, पेप्टिक अलसर से बचाव अधिक रेशोयुक्त शाकाहार से ही सम्भव है, मांसाहार से नहीं। मांस एवं अण्डे में पाया जाने वाला अधिक कोलेस्ट्रोल हृदय रोग व लकवे को जन्म देता है। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० गोल्डस्टीन एवं ब्राउन ने अपने प्रयोगों से ही यह सिद्ध कर दिया है। इसी कारण विदेशों में हृदय रोगियों को अण्डा, मांस वर्जित है। शाकाहार से इन घातक रोगों से लडने की क्षमता में कमी मांसाहारी व्यक्तियों में अधिक देखी गयी है। मधुमेह की रोक एवं उपचार अधिक रेशोयुक्त से ही सम्भव है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1985 में पशुओं के द्वारा मनुष्य में होने वाली अधिकतर बीमारियों के लिए पशुओं के सम्पर्क एवं मांसाहार को उत्तरदायी ठहराया है। गठिया पथरी इत्यादि कुछ बीमारियाँ मांसाहारी व्यक्ति में अधिक पायी गयी है।

कुछ लोग बात करते हैं कि मांस में, अण्डे में अधिक प्रोटीन होता है, शाकाहार में उतना अपेक्षित प्रोटीन हमें नहीं मिल पाता। माँसाहारी व्यक्ति अधिक हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान होते हैं, यह नितान्त भ्रामक है। जहाँ सूअर, गाय, भेड और बकरी के माँस में 18 से 11 ग्राम प्रति 100 ग्राम प्रोटीन होता है, वहीं आप देखेंगे कि दालों में 20 से 23 ग्राम, सोयाबीन में 43 न्यूट्रीन गटे में 54 ग्राम, पनीर में 2.4 ग्राम, मूंगफली में 26 ग्राम प्रोटीन प्रति 100 ग्राम होता है। दूसरी तरफ माँसाहार में पायी जाने वाली वसा की अधिक मात्रा स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है। यह भी निश्चित है कि विविध प्रकार से मिश्रित शाकाहार में आवश्यक एमीनो एसिड्स माँसाहार की भाँति सन्तुलित मात्रा में होते हैं।

अण्डे में जहाँ 13.3 ग्राम प्रति 100 ग्राम प्रोटीन होता है, वही उसमें वसा की मात्रा भी 13.3 ग्राम प्रति 100 ग्राम पायी जाती है। अण्डे में सबसे अधिक कोलेस्ट्रोल 500 मि० ग्राम प्रति सौ ग्राम होता है। अण्डे को यदि धूप की रोशनी में छोड दिया जाये तो इसके पोषक तत्व काफी मात्रा में नष्ट हो जाते हैं। अधिक देर तक गर्म वातावरण में रखने पर तमाम माइक्रोब्स आक्रमण कर अण्डे को नष्ट करने लगते हैं। प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि यदि 8 डि. से. ग्रे. से अधिक तापक्रम पर अण्डे को रखो तो उसका विनाश शुरू हो जाता है। इसके अलावा हमारे देश में जहाँ अण्डों की पेकिंग बहुधा ठीक प्रकार से नहीं होती है लाने ले जाने में एक भी अण्डा फूट जाता है, तो वह अन्य अण्डों को नष्ट करने लगता है। अण्डे को उबालने या फ्राई करने पर उसका विटामिन बी-1, बी-2, बी-12 काफी मात्रा में नष्ट हो जाता है। अण्डे की पीली जर्दी में अधिक मात्रा में पाया जाने वाला कोलेस्ट्रोल, नियमित रूप में खाने वाले मनुष्य के लीवर व खून की नलिकाओं में जम जाता है, जिससे हृदय रोग व लकवा हो सकता है, जब अण्डे और दूध के प्रोटीन को सबसे अच्छा माना जाता है, तब फिर हम अण्डों के दोष को देखते हुए दूध को प्राथमिकता क्यों नहीं देते हैं ?

जहाँ एक भारतीय की औसत आयु तेजी से घट रही है वहीं रूस के अब्सेसिया शतायु होते हैं। उनका मुख्य भोजन शाकाहार ही है। वहाँ के लोगों में हृदय रोग नहीं के बराबर पाया जात है। जो पाया भी जाता है, वह 100 वर्ष की आयु के पश्चात्। जहाँ तक शारीरिक शक्ति एवं क्षमता का प्रश्न उठता है खिलाडियों में शाकाहार दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता जा रहा है। क्योंकि यह देखा गया है कि जहाँ शाकाहार से अधिक शक्ति एवं क्षमता संभव है वहीं उनमें अधिक चुस्ती-फुर्ती दिखाई देती है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि शाकाहारी व्यक्ति को साइकिल चलाने की क्षमता मांसाहारी व्यक्ति की अपेक्षा तीन गुना अधिक होती है।

माँस खाने से माँस-पेशियाँ अधिक बलवान होती हैं, यह नितान्त भ्रामक एवं हास्यास्पद है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार आप कुछ भी खायें, शरीर की पाचन क्रिया उसे एक ही पदार्थ में बदल देगी। प्रकृति के सबसे अधिक पेशीयुक्त पशु गाय, बैल, घौडा, भैसा, गोरिल्ला, याँक, साँछ, हाथी, वनमानुष आदि शाकाहारी होते हैं।

मांसाहारी, शाकाहारी व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक बीमारी पडते हैं। इंग्लैंड में एकै सर्वेक्षण से यह पता चला है कि मांसाहारी व्यक्ति शाकाहारी व्यक्ति की तुलना में दुगने अनुपात में अस्पताल जाते हैं।

अगर हम धार्मिक दृष्टि से देखें तो कोई भी धर्म चाहे वह हिन्दू, इस्लाम,

बौद्ध, जैन या ईसाई धर्म हो प्राणियों की हत्या करने को नहीं कहता है तो फिर हम अपने खाने के लिये इन निरीह एवं बेकसूर प्राणियों की हत्या क्यों करते हैं? केवल अपनी स्वादतृप्ति के लिये, यह अधर्म है। हमें सम्पूर्ण प्राणीजगत से प्रेम करना चाहिये। सम्पूर्ण मानव जाति से प्रेम करना चाहिये। किसी को सताना या उसकी हत्या नहीं करनी चाहिये यही मानव धर्म हैं।

भगवान राम, कृष्ण, भीष्म, अशोक, बुद्ध, रविदास, कबीर, रहीम, रसखान, अकबर, नानकदेव, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राधाकृष्ण, लालबहादुर शास्त्री, विनोबा भावे, जार्ज बर्नाड शा, रविन्द्रनाथ टैगौर, थॉमस एडीसन, आल्बर्ट आइन्स्टाइन, बैंजामिन फ्रेंकलिन, महात्मागांधी, आइजक न्यूटन, प्लेटो, शेले, हेनरी, डेविड, थोरे लियो, टालस्टाय, वाल्टेयर, जे. कृष्णमूर्ति, एलेक्जेण्डर और पॉप जैसे महान् लोगों ने भी हमें यही सन्देश दिया है तथा उसे अपने व्यवहार में अपनाया है।

शाग-सब्जी खाइये, रोग दूर भगाइये-

1961 ई० में जब से 'दि जनरल ऑफ अमेरिकन मैडिकल एसोसिएशन' में यह प्रकाशित हुआ कि शाकाहारी पथ्य 90 से 97 प्रतिशत हृदय रोगों को रोक सकता है, तब से संसार के बडे से बडे देश अमेरिका में खलबली मच गयी है और वह वैकल्पिक आहारों की ओर ताकने लगा है।

वैसे तो मांसाहार के विरूद्ध और शाकाहार के पक्ष में अनेक रिपोर्ट आयी हैं किन्तु 'सेवन्थ डे एडवेंटिस्ट' नामक ईसाइयों का एक विशेष शाकाहारी सम्प्रदाय जो सिगरेट, कॉफी, चाय और शराब तक नहीं पीता, उसके पचास हजार शाकाहारी अनुयायियों पर सर्वेक्षण किया गया जिससे पता चला कि उनमें कैंसर का अनुपात आश्चर्यजनक रूप से बहुत कम है। साथ ही यह भी पाया गया कि उनके जीवन की अवधि अपेक्षाकृत लम्बी है। (लल्लन प्रसाद व्यास)

कैंसर से बचने के लिये मांसाहार छोडें :-

कैन्सर एक प्राणघातक, असाध्य रोग है। इस रोग का कारण भोजन से संबंधित है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने कैंसर का संबंध भोजन में होने वाले उस भाग से पाया है, जिसका पाचन नहीं होता है इसे ''फायबर'' कहते हैं। जिन भोज्य पदार्थों में फायबर (रेशों) की कमी होती है, उसके सेवन से कैंसर की संभावना अधिक होती है। इसके विपरीत जिन भोज्य पदार्थों में फायबर की अधिक मात्रा होती है, उनके सेवन से कैंसर की संभावना कम होती है। फायबर की मात्रा अधिकांशतः फल-सब्जियों में अधिक होती है, मांस में बिल्कुल नहीं होती। अतः प्रसिद्ध न्यूरोलोजिस्ट डॉ. डी.सी.

जैन, दिल्ली ने एक सलाह दी। उन्होंने कहा- ''आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य शाकाहारी ही रहे अन्यथा कैंसर की भयानक बीमारी से बचना असंभव होगा।''

शाकाहार स्वास्थ्य वर्धक :-

ब्रिटेन द्वारा समुद्री नाके बंदी के कारण प्रथम महायुद्ध के समय डेनमार्क के लोगों के द्वारा मांस का उपयोग आहार के रूप में बहुत कम किया गया। युद्ध काल में जिन लोागें ने वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य का अध्ययन किया, उनका कहना है कि मांसाहार कम करने से लोगों का स्वास्थ्य बेहतर हो गया था। (शिवदास बैनर्जी)

अण्डे से सावधान - बीमारियों को बुलावा न दे :-

प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए कम से कम तीन बातों की आवश्यकता होती है। ये हैं - शुद्ध हवा, शुद्ध जल और शुद्ध आहार का अन्न। हमारी अपेक्षा रहती है कि जो हम लेते हैं, वह अन्न, हवा, पानी, स्वास्थ्य उत्तम रखने के लिए, स्वास्थ्य संवर्धक, शरीर के होने वाले क्षरण की क्षतिपूर्ती के लिए पुष्टिकारक तथा दिन-प्रतिदिन के मन और तन को कार्यकलाप के लिए ऊर्जादायी हो। यह अपेक्षा भी रहती है कि जो अन्न हम खाते हैं उससे विभिन्न रोग न हो। उपर्युक्त कसौटी यदि अण्डा एक खाद्य पदार्थ पर लगायें तो हम पायेंगे कि मनुष्य के लिए अण्डे कभी एक उत्तम आहार नहीं हो सकते। उनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। इसके बावजुद इसके, अपने व्यक्तिगत संस्थायें इस बारे में एकांगी और धोखादायी प्रचार कर रही हैं। महज इसलिए कि उनके अण्डों की खपत हो और उनका धंधा मुनाफे में चले। इस बारे में जागरुक होना चाहिये। उनके विज्ञापनों के शिकार होने से बचना चाहिए। (डॉ. धनंजय गुण्डे, जैन)

अण्डों के तत्त्व :-

अण्डों का जो भाग खाया जाता है (सफेद और पीला वल्क) उसके तत्त्वों में हमारी ऊर्जा प्राप्ति के लिए आवश्यक कार्बोहायर्डेट तत्त्व है ही नहीं। उसी प्रकार उनमें विटामिन (ए) नहीं है और क्षारों की मात्रा भी अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में बहुत ही कम है। अधिकांश लोगों को इसकी जानकारी ही नहीं है।

100 ग्राम पदार्थ के खाद्य तत्त्व

पदार्थों के नाम	प्रोटीन	कार्बो.	चर्बी	सार	ऊर्जा	कीमत
अण्डे	13.3	--	13.3	1.00	173	1-20
गेहूँ	13.2	79.2	1.7	1.8	353	0-30
मूंग	24.00	56.6	1.3	3.6	334	0-80
सोयाबीन	43.2	29.5	19.5	4.6	432	0-50

उपर्युक्त तालिका से समझ जायेंगे कि 100 ग्राम (लगभग दो) अण्डों से जितना प्रोटीन मिलता है उतना ही गेहूँ से भी। मूंग, चना जैसी दालों से दुगुना और सोयाबीन दालों से तीगुनी-चौगुनी माात्रा में प्रोटीन मिलता है। यदि एक ग्राम प्रोटीन की कीमत निकाले तो इस प्रकार खर्चा आयेगा।

एक ग्राम प्रोटीन

अण्डे	14 पैसे
गेहूँ	04 पैसे
दालों से	03 पैसे
सोयाबीन	04 पैसे

अर्थात् केवल प्रोटीन का ही विचार करें तो अण्डों से मिलने वाला प्रोटीन सोयाबीन से सात गुणा दालों से चार गुणा तथा गेहूँ से तीन गुणा मंहगा पडता है।

इस प्रकार कैलोरी (ऊर्जा) के व्यय का ब्यौरा इस प्रकार रहेगा -

100 कैलोरी

अण्डे	90 पैसे
गेहूँ	09 पैसे
दालों	08 पैसे
सोयाबीन से	05 पैसे

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि अण्डे से प्राप्त कैलोरी सबसे महंगी पडती है। ध्यान रहे केलोरी अण्डे से मिले या अनाज से उसकी श्रेणी में कोई अन्तर नहीं होता।

वनस्पति जन्य जो एक दल या पिस्टल पदार्थ है उनमें लोहा, कैल्सियम और अन्य क्षारों की मात्रा अण्डे या मांस जैसे प्राणिज पदार्थों की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है। यानि अण्डों या प्राणिज पदार्थों से खनिज और जीवनसत्व का प्रदाय ठीक से और पर्याप्त नहीं होता है।

इसलिये अण्डों या मांस जैसे प्राणिज पदार्थों को अपूर्ण आहार कहा जाता है उनमें कार्बोहाइड्रेट नामक महत्त्वपूर्ण तत्त्व नहीं है और विटामिन तथा खनिज पदार्थ भी कम मात्रा में मिलते है। इतना ही नहीं आर्थिक दृष्टि से भी महंगे होते हैं। इसलिए मानव प्राणी केवल अण्डे-मांस आदि प्राणिज पदार्थ खाकर जीवित नहीं रह सकता। प्राणिज पदार्थ के साथ-साथ यह भरपूर मात्रा में शाकाहारी पदार्थों पर जीवित रह सकता है।

अण्डे खाने से नुकसान-

नियमित अण्डा सेवन से हृदयरोग, रक्तचाप, गुर्दे की बीमारी एवं उदर-विकारों को आमंत्रण देना है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हृदयरोग एवं रक्तचाप होने के प्रमुख कारणों में एक है। रक्तवाहिनियों की भीतर दीवारों पर कोलेस्टरोल आहार से ही ग्रहण किया जाता है और उसका मुख्य आहार या भण्डार अण्डे, मांस, मलाई, मक्खन, दही का चक्का और घी में होता है। यदि नियमित रूप से आहारों में 200 से 220 मिलीग्राम अधिक चाहिये और आध्यात्मिक विकास की योजना से भिन्न नहीं है, साधन और साध्य की तरह से है। एक में दूसरे की छाया रहती है। देह की सुरक्षा और वृद्धि के लिए खाने-पीने, खेल-तमाशों आदि की योजना और आत्मा की सुरक्षा के लिये मन्दिर, मस्जिद और गिरजों का निर्माण जीवन के दो भिन्न लक्ष्य नहीं हैं। जब तक हम शरीर को ही मन्दिर-मस्जिद या गिरजा नहीं बना लेते इन बाहरी मन्दिरों से हमें लाभ नहीं होगा। हमारा नित्य प्रति का जीवन ही हमारा धर्म बने। अपने से अलग जितने अन्य प्राणी है, जिन्हें बाइबिल के अनुसार भी भगवान् ने मनुष्य के संरक्षण में देकर हिदायत दी है किन्तु हत्या नहीं करेगा, उनके (अन्य प्राणियों के) प्रति प्रेम, करूणा और उनके संरक्षण की चिन्ता ही हमारी उपासना और पूजा हो। हरेक शब्द जो हमारे मुंह से निकले उसमें भगवान् के स्वरूप का दिव्य दर्शन रहे और एक ग्रास भी हमारे मुंह में जाये उस पर मोहर रहे कि तुम हत्या नहीं करते हो।

जीवन अलग-अलग कोष्ठकों में नहीं बांटा जा सकता है वह एक सम्पूर्ण इकाई है। हम जो कुछ खाते हैं इसलिए उसका असर हमारे विचारों और हमारी योजनाओं पर पडता है। मनुष्य के सन्दर्भ में वह क्या खाये इसका सीधा संबंध उससे क्या बनता है? वह केवल जीवित रहने के लिए हीं भोजन करते, क्योंकि उसके जीवनका लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है। मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके जीवन के लक्ष्यों के संबंधों की चर्चा और स्पष्टीकरण ऊपर किया गया है उससे सम्भवतः यह नतीजा निकलता है कि अपने आहार को चुनते समय उसे इतनी चीजें अपने ध्यान में रखनी चाहिए।

1) उसके आहार का प्रकार और परिणाम उसकी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित किया जाये। उसका भोजन अच्छी तरह से संतुलित हो।

2) वह कुछ भी खाये उसका अपना पैदा किया हुआ ही तो बहुत अच्छा है, नहीं तो कुछ भी जमीन से पैदा होता हो उसे ही खायेगा।

3) वह उत्पन्न भी ऐसी चीजें करें जिनकी उपज सबसे अधिक हो, दूसरे

शब्दों में यों कहे कि वह उन चीजों की ही खेती करे, जिनकी उपज अधिक से अधिक लोगों का पेट भर सके। संतुलित भोजन के लिए संतुलित खेती अनिवार्य है। संतुलन में देश की गरीबी का ध्यान जरुर रखा जाय।

4) वह जो कुछ भी खाये उसके पोषक तत्त्वों को बिना नष्ट किये या बिना नुकसान पहुँचाये अधिकांश प्राकृतिक रूप में ही खाये।

5) आहार के पोषक तत्त्वों के अतिरिक्त उसके नैतिक मूल्यों को भी हमें ध्यान में रखना चाहिये। पशु इस प्रकार के मूल्यों को नहीं मानते। कुत्ता या बिल्ली एक बच्चे या रोगी के लिए दूध और बिस्कुट नहीं छोडेंगे खा जायेंगे। हमें इसलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हम जो कुछ खा रहे हैं उसके कारण किसी दूसरे को उससे वंचित नहीं होना पडे।

6) अपने आहार की चीजें पैदा करते और उनका उपयोग करते समय भी हम इस बात का ध्यान रखें कि प्रकृति के साथ होड तो नहीं कर रहे, उसका विरोध तो नहीं कर रहे। हमें प्रकृति की सहायता करनी चाहिए उसके साथ सहयोग करना है।

7) जहाँ तक संभव हो अपने भोजन के लिए हम मौसमी और स्थानीय फल-फूल, पत्तियाँ और मूल चुनें।

पश्चिमी डॉक्टरों का एक बडा समुदाय ऐसा है, जिसका यह दृढ मत है कि मनष्य के शरीर की रचना को देखते हुये वह शाकाहारी लगता है। उसके दाँत, अमाशय इत्यादि उसे शाकाहारी सिद्ध करते हैं। शाकाहार में फलों का समावेश होता है। फलों में ताजे फल और सूखा मेवा अर्थात् बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा इत्यादि आ जाते हैं।

(महात्मा गाँधी) दिनांक 2-9-1942

फल और पत्रशाक ही जो श्लेष्माहीन होते हैं, मनुष्य के प्राकृतिक खाद्य पदार्थ हैं, अनुपयुक्त खाद्य पदार्थों में रोगोत्पादक तत्त्व रहते हैं। वे मनुष्य को मार और रोग से अक्रांत रखते हैं। इसलिए खाद्य पदार्थों का मूल्यांकण उनके पोषक तत्त्व के विचार से न कर हमें यह देखना पडेगा कि शरीर में रोगकारक पदार्थ श्लेष्मा उत्पन्न करते हैं या वे मल को घुलाकर बाहर करने में सहायक होते हैं, पर आज का सभ्य मनुष्य इस दृष्टि से अपने खाद्य पदार्थों का चुनाव न कर निम्नलिखित खाद्य पदार्थों या नहीं के श्रेणी के पदार्थों को मुख्य रूपसे खाया करता है जिनके परिचयात्मक विवरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि वे अधिकांशतः अनुपयुक्त ही है।

मांस :- सारे मांस गलने की अवस्था में शरीर में गलने की अवस्था में शरीर में विष,

मूत्रिकाम्ल और श्लेष्मा उत्पन्न करते हैं। वसा तो सबसे बुरी चीज है, यहाँ तक कि मक्खन भी मानव शरीर के उपयोग में नहीं आता, कोई भी जानवर वसा नहीं खाता।

अण्डा :- यह तो मांस से भी बुरा होता है, क्योंकि इसमें प्रोटीन तो बहुत ज्यादा होता है, लेई जैसा एक तत्त्व भी होता है, जो मांस से भी ज्यादा कब्ज करता है।

बहुत से विद्वानों ने यह कर दिखाया है कि प्रागैतिहासिक काल का मनुष्य प्राकृतिक पदार्थों, फलों और पत्रशाकों पर ही रहता था और वर्षों के परीक्षण और प्रयोग से मुझे भी इसका पूरा-पूरा निश्चय हो गया है, पर फलाहार या श्लेष्माहीन आहार चलाने पर अन्दर क्या घटित होता है इस बात का ज्ञान न होने के कारण लोग सत्य को स्वीकार न कर गलत रास्ते पर भटकते रहते हैं। निरोग करने की प्रक्रिया ज्यों-ज्यों गहराई में पहुँचती जाती है त्यों-त्यों नये-नये और विचित्र संवेदन होने लगते हैं पर चूँकि इन संवेदनों का अर्थ पुराने शरीर विज्ञान के सहारे लगाया जाता है, इसलिए वह गलत ही होता है, इसमें भी संदेह नहीं कि केवल फल यहाँ तक कि एक ही तरह फल को ग्रहण किया ये तो आरोग्य लाभ ही नहीं होगा, बल्कि शरीर को पूर्ण पोषक प्राप्त होगा और रोग की सारी संभावना दूर हो जायेगी। जिन लोगों को इस सत्य का और आहार द्वारा रोगनिवारण पद्धति संबंधी बातों का ज्ञान नहीं होगा वे न तो शरीर की पूरी सफाई करने में समर्थ होंगे न पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने में और न परिस्थिति ठीक तरह से समझने में। जब तक मल और पुराने विष, शरीर और विशेषकर भेजे में चक्कर लगाते रहेंगे तब तक संदेह और अविश्वास उत्पन्न होता रहेगा। इसके विपरीत आपका शरीर मल और विषों से जितना अधिक मुक्त होगा प्राकृतिक रूप से अधिक इस महान् सत्य का ज्ञान, अनुभव और विश्वास होगा कि प्राकृतिक आहार पर्याप्त ही नहीं होता बल्कि वह आपको अधिकाधिक ऊपर उठाकर ऐसी शारीरिक और मानसिक अवस्था में पहुँचा देता है जिसका आपने पहले कभी अनुभव नही किया होगा।

आहार चिकित्सा
लेखक - अनील्ड इहरिटकी

-: स्वास्थ्यामृतम् :-

शुद्ध-प्राकृतिक-ऋतु अनुकूल योग्य भोजन-पानी (आहार), विहार (दैनिक क्रिया), विचार (सरल-सहज-पवित्र भाव) समस्त स्वास्थ्य के मूल तत्त्व एवं समस्त रोग के मूल पथ्य है।

परिच्छेद - 10

चिकित्सा परामर्श :-

गाय दही पीता रहे, काँच चूर्ण निकसाय।
णमोकार अरहंत जप, मरने से बच जाय॥

आम गुठली सेंककर, यदि नारी खा जाय।
बार-बार खाती रहे, रक्त प्रदर नश जाय॥

नाग केशर छः ग्राम जू, तक्र साथ पी जाय।
बार-बार पीती रहे, रक्त प्रदर नश जाय॥

तीन ग्राम कत्था भके, नागर बेली पान।
पेट दर्द वह दूर हो, बच जाती है जान॥

चार ग्राम ओवा भके, एक ग्राम घशनीक। (अजवाइन)
सैंधव या काला मिले, तीन बार में ठीक॥

तिल का तेल दस ग्राम पी, प्रातः संध्याकाल।
पेट दर्द सब दूर हो, प्रतिदिन ले तत्काल॥

तीन ग्राम कपूर ले, तिडी पान के साथ।
समस्त उपद्रव बंद हो, यत्न सु आपके हाथ॥

काले तिल गुड क्वाथ, पी नष्टावर्त नश जाय।
रक्त वृद्धि होती रहे, हाई ब्लडप्रेशर जाय॥

केला मिश्री खाय तो, सोम रोग नश जाय।
पाँच ग्राम सतावरी, पिये दूध स्राव जाय॥
(गर्भाशय से तक्र सम पानी निकलने को सोम रोग कहते हैं।)

दूध अंगुर सेवन करे, हाई ब्लड प्रेशर जाय।
चिंतायें सब छोड दे, ब्लड प्रेशर भग जाय॥

राई हिंग फक्की से, मृत बालक खिर जाय।
पेट बाह्य होता तुरंत, कष्ट दूर हो जाय॥

लौंग मिश्री यदि चाट ले, वमन गर्भिणी पलाय।
लौग हल्दी का लेप कर नासूर रोग जु जाय॥ (आँख रोग)

हर्ड चूर्ण गुड साथ ले, बवासीर हो दूर।
नाग केसर मोसंबीरस, भके दस्त हो दूर॥
बेल फल यदि जु खाय तो, दस्त वेग रुक जाय।
गाय दूध केला भके, प्रदर सब मिट जाय॥
कायफल जु तैल को, गर्म करके जु शीत।
कर्ण में डाले उसे, कर्ण रोग नश मित॥
ताजे नीम पत्ते रगड, कुष्ट रोग हो दूर।
पत्र करेलिका जु रस, कृमि जूँ पेट से दूर॥
सुपारी चूर्ण को भके, पाँच ग्राम, कृमी जाय।
एक ग्राम काली मिर्च, दूध पीये प्रतिशाय॥
सफेद कटेली की जु जड, यदि से कोश धर लेत।
लक्ष्मण बूटी है यही, धन सम्पत्ति कर देत॥
काला जिरे नमक, यदि अजवाइन भक जाय।
सोते नहीं पेशाब हो, तिल गुड यदि ये खाय॥
लंघन कफ सिर शूल हर, यह निश्चितकर ध्याय।
गुड के मालपुअे भके, सूर्यातव निशाय॥
गुलेठी जु चुसे शिशु, दंत निकल नहीं कष्ट।
तांबा जस्त जु कंठ में, कपडे बांध न कष्ट ॥
ब्राह्मी सतावरी तथा मुलेठी एवं सूंठ।
गोरखमंडी को पिये, बल्ड प्रेशर सु छूट॥
गाय दूध शतावरी, रस पी पथरी हो दूर।
सरसों बच का लेप कर, शोध अवश्य हा दूर॥
शतावरी घी दूध पी, निद्रा आवे जान।
भैस दही से जिस तरह, तन्द्रा आती जान॥
सौंफ बिलगीरी ग्राम छह, जल से हर अतिसार।
सौंफ शक्कर ग्रम छह, नेत्र ज्योति कर धार॥
कत्था चूसे दाँत दृढ, सोना मुखी न रोध।
कोष्टबद्धता नष्ट हो, फिटकरी हल्दी बोध॥
दही सुपारी दूध से कृमि रोग हो सब दूर॥

सुपारी हल्दी चूर्ण से, वमन अवश्य रूक जाय।
राई पीस जु नस्य ले, मृगी रोग नश जाय॥
गुड हल्दी खाता रहे, बवासीर नश जाय।
सेव ब्राह्मी चूर्ण से, उन्माद नश जाय॥
पीपल पीस जल जु पियें, मुर्छा होती दूर।
आमल की मिश्री पिये, खुश्की होती दूर॥
यवक्षार शक्कर पीये, पथरी होवे दूर।
बेलपत्र जल से पीये, मधुमेह होय नाश॥
शीतल मिर्च जु चूर्ण से, मूत्र कृच्छ नश जाय।
नींबू रस जवक्षार से, सूजाक भी नश जाय॥
हरी दूब का रस सुंधे, रक्त पित्त मिट जाये।
जावित्री खा सेंक के, विषुचिका नश जाय॥
पोदिना का रस पिये, हैजा हो मिट जाय॥
अफीम का विष दूर हो, यदि खार्वे अखरोट॥
ठण्डक सारी दूर हो, यदि जु धैर्यमय कोट।
कमलकट्टेनु ग्राम छः, पिये श्वेत प्रदर जाय॥
करेला चूर्ण मिश्री युत, खा मधुमेह पलाय।
काली मिर्च पानी घिसे, नेत्र में उसको कुं आच॥
मिश्री को अंजन करें, नेत्र रोग नश जाय।
दही केला खा जाय तो, पैचिश रोग पलाय॥
लंघन यदि करता रहे, मंदाग्नि नश जाय।
गोघृत हल्दी मोम से, व्रण सबही नश जाय॥
द्राक्षारस जु नस्य ले, हो नकसीर पलाय।
दाख क्वाथ कुल्ले करे, मुख के रोग नशाय॥
नागर बेल के पान से, सिर का दर्द नशाय।
पान अर्क पीता रहे, अर्जीण शीघ्र पलाय॥
नारियल जटा जू भस्मसु, रक्त स्त्राव रूक जाय।
नारियल जटा जु क्वाथ से, कृमि रोग नश जाय॥
यदि सिंघाडे खाये तो, अतिसार नश जाय।
रोटी सिंघाडे की भके, रक्त प्रदर नश जाय॥

गो-गोबर सेंधा नमक, लेप जलोदर जाय।
चूर्ण सिघाडा जल पिये, अति मूत्र रूक जाय॥
सीताफल मंदाग्नि हरे, हिचकी हर घीभात।
यदि इल्जाम झूठा लगे, हिचकी तुरन्त पलाय॥
ग्राम सो पैठा रस, शक्कर सह पी जाय। (2 मास)
बीमार होता ठीक है, निद्रा भी आ जाय॥
संतरा, जीरा, नमक, पिये अम्ल पित्त जाय।
लाल फिटकरी जल पिये, सर्प विष जु नश जाय॥
सूंठ सौंफ आदि सिकी, मिश्री देय मिलाय।
शीतल जल सेवन करे, रक्त दस्त रूक जाय॥
दधि एक कप में मिला, बुन्द सुधा की खाय।
चार दिवस में पिलाय, अवश्य ही नश जाय॥
एक सेर मिस्री पिये, गागर में धर भौर।
वर्ष में दो बार पी, हो नकसीर न दौर॥
घी मिस्री अरु दूध पी, प्रातः सायंकाल।
सर्व रोग चालिस दिन, कम होते तत्काल॥
ग्राम पिचहत्तर कौंच बीज, पीपल मूल त्रिभाग।
बीस पूडी कर दूध पका, मिस्री सह भख जाय॥
कौंच बीज वृद्धि करें, ताकतवर है जान।
संधी बात हर शेष है, दर्द हरे सब मान॥
ब्रह्मचर्य पालन करें, इसमें यह है पथ्य।
आत्म ब्रह्म अनुभव करें, मोह रहित यह तथ्य॥

-: सेवामृतम् :-

''क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्'' के अनुसार प्रत्येक पिडीत जीवों की सेवा करना ''सेवा धर्म परम धर्म'' है परंतु अधिकांश तथा-कथित धार्मिक व्यक्ति तक माता-पिता-गुरु-रोगी, दुःखी, विपन्न जीवों की सेवा नहीं करते, इसे नौकरों का काम मानते हैं, घृणा करते हैं।

परिच्छेद - 11

सिद्धौषध

इस अध्याय में जो सिद्ध औषधि है उसका वर्णन है। श्री अग्निदेव ने कहा - भगवान् धन्वन्तरि ने सार स्वरूप और मृत को संजीवन करने वाला आयुर्वेद सुश्रुत के लिए जो बोला था उसका अब मैं वर्णन करता हूँ। सुश्रुत ने धन्वन्तरि से कहा था कि मुझे आयुर्वेद शास्त्र के विषय में बतलाइये जो कि मनुष्य, अश्व और हाथियों के रोग का नाश करने वाला है। इस सम्बन्ध में जो परम सिद्ध योग है तथा सिद्ध मंत्र है और मृत को भी जीवित कर देने वाले हैं उन्हें बतलाइये। (अग्निपुराण द्वि. भा. पृ.-60)

ज्वर रोगी की चिकित्सा :- इस प्रार्थना पर भ. धन्वन्तरि ने कहा कि वैद्यों का कर्तव्य होता है कि बल की रक्षा करते हुए जिसको ज्वर हो उरको लंघन कराने की योजना करनी चाहिए। ज्वर युक्त पुरुष को सविश्व लाजांओं का मांड (खीलों का मांड) और तृड्ज्वरांत को शृत जल देना चाहिए। छः दिन व्यतीत हो जाने पर मुस्त (मोथा) पर्यटक, उशीर (खस) चंदन, उदीच्य और नागर इससे तिक्त किया हुआ अर्थात् उक्त वस्तुओं का क्राथ (काढा) निश्चित रूप से रोगी को पिलाना चाहिये।

जब दोषों से रहित हो जावे तो उसको स्नेहन करावे और स्नेहन कराने के पश्चात् उसे विरेचन करावे अर्थात् दस्त कराने चाहिएँ। जीर्ण अर्थात् पुराने पष्टिक (यव आदि) नीवार, रक्त शांति और प्रमोदक इस प्रकार के धान्य ज्वरों में दृष्ट हुआ करते हैं तथा मलों की विकृति भी अभीष्ट होती है। मुद्ग (मूँग), मसूर, चणक, सकुष्टक, कुलत्थ, आढ का (अरहर) लावकादि, ककोंटक, वटोकल, पठोल, सफल, निम्ब, पर्यट और दाडिम (आनार) ये ज्वर में विधिपूर्वक औचित्य का विचार कर दिये जाते हैं। यदि ज्वर अधोगामी हो वमन करना और ऊर्ध्वगामी हो तो विरेचन कराना अच्छा लाभप्रद होता है। रक्त पित्त में शुष्ठि (सौंठ) से रहित षडङ्ग का पान करना चाहिये।

सक्तु (सतुआ), गोधूम (गेहूँ), और लाज (खील), यव (जौ), शालि, मसूर छिलके सहित चना, मुद्ग (मूँग) इनका भक्षण करना चाहिए। गोधूम लाभप्रद हैं। ये उपर्युक्त वस्तुएँ घृत तथा दुग्ध से साधित होनी चाहिये। क्षोद्र, वृषरस और मधु (मधुरस) देवें।

अतिसार की चिकित्सा :- अतिसार में (दस्त लग जाने की बीमारी में) पुराने

शालियों का खाना आवश्यक होता है।

अनभिष्यन्दि जो अन्न हो और लोघ्र बल्कल से संयुक्त हो वह वातिक अर्थात् वायु बढाने वाला होता है। उसको वर्जित करना चाहिए। गुल्मों में सदा यत्न करना चाहिये।

क्षीर के साथ वाट्य का अशन करना चाहिए। घृत से साधित वास्तुक (बथुआ) खावें। जो जठर के रोग वाले हैं, उनको तिक्त गोधूम शालि हितकर होते हैं।

कुष्ठियों की चिकित्सा :- गोधूम शालि, मूँग, ब्रह्मक्ष खदिर, अभया प्रंचकोल, जांड्गल, निम्बधात्री, पटोलक, मातुलुंगरस जजाजि शुष्क मूलक और सैंधव कुष्ठियों के लिए हितकर होते हैं। इनके पान करने के लिए खदिर का जल अधिक अच्छा होता है।

दालों के लिए मसूर और मूँग लेने चाहिए तथा पुराने शालि खाने के योग्य होते हैं। निम्ब और पर्यटक के शाक तथा जाँगलों का रस लाभदायक है।

जो-जो कुष्ठ का हनन करना चाहते हैं, उन्हें विडंग, मिर्च (काली), मुस्त, कुष्ठ, लौंघ्र, सुवर्चिका, मैनसिल और बच इनको मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिए।

प्रमेह की चिकित्सा :- अपूप, कुष्ठ, कुलमाष और यव आदि वस्तुएँ खाने से प्रमेह के रोगियों को लाभप्रद होती है।

राज यक्षमा की चिकित्सा :- यवान्न की विकृति, मूँग, कुलत्थ और जीर्ण (पुरानी) शालि तथा तिक्त और रुखे एवं हरे शाक और तिल, शिग्रुक, विभीतक और इगुंदी के तेल, मूँग और जौं के साथ गेहूँ धान्य जो एक वर्ष तक रखे हुये हों - जाँगेल का रस यह राज यक्षमा के रोगियों के भोजन में प्रशस्त होते हैं।

श्वाँस और कास की चिकित्सा :- जिनको श्वाँस और काँस (खाँसी) का रोग हो, उन मनुष्यों को कुलत्थ, मुद्ग, कोल आदि शुष्क मूलक और जाँगल तथा पूम एवं विष्कर सिद्ध करके और दही तथा अनासे साधित करके एवं मातुलुंग का रस, क्षौद्र, द्राक्षा और व्योष आदि संस्कार करके यव तथा गोधूम और शालि अन्नों से भोजन करना चाहिये।

श्वाँस तथा हिक्का की चिकित्सा :- दशमूल, बला, रास्ना और कुलत्थ और साधित घृत, रस और क्वाथ शाँस तथा हिक्का (हिचकी) के निवारण करने वाले पीने चाहियें। शुष्क मूलक, कौलत्थ और जंगल रसों से जीर्ण जौ, गेहूँ और शालि अन्न को उशीर के साथ खाना चाहिये।

शोध की चिकित्सा :- जिसको शोध (सूजन) हो, उसे गुड के साथ पथ्या अथवा

गुडनागर को खाना चाहिए। तक्र (मठ्ठा) और चित्रक ये दोनों ग्रहणी रोग के नाशक होते हैं।

वात रोगी की चिकित्सा :- जो मानव वात के रोगी होते हैं उनके लिए पुराने जौ, गेहूँ, शालि जांगल रस, मूंग, आंवला, खजूर, मृद्धीका, बेर, मधु, घृत, दूध, मठ्ठा, निम्ब, पर्पटक, वृष और तक्रारिष्ट ये सदा हितकर होते हैं।

हृदय रोगी, हिक्का रोग की चिकित्सा :- जो हृदय के रोगी होते हैं उन्हें विरेचन देना चाहिए। जो हिक्का (हिचकी) के रोगी होते हैं, उनको पीपल हितप्रद होती है।

अर्श (बवासीर) की चिकित्सा :- भोजन में रक्त शालि, नीवार कल्भ आदि, यवान्न की विकृति, शाक, सौवर्कल, शटी जल के सहित तक्र और मण्ड ये वस्तुएँ अर्श के रोगियों को पथ्य होती हैं।

मूत्र कच्छ्र की चिकित्सा :- मूत्र कृच्छ्र के रोग में मूस्ताभ्यास और चित्रक का हल्दी के साथ लेप, यवान्न विकृतशाली, वास्तूक (बथुआ) सुवर्चल के साथ, त्रपुष्टवारू और गेहूँ, जौ, क्षीर, ईख और घृत से संयुक्त ये खाने में लाभप्रद होते हैं।

तृष्णा रोग की चिकित्सा :- तृष्णा का रोग हो तो शालि अन्न और केवल उष्ण पानी और पय अथवा घृत को उसमें देना चाहिए। इससे संतृष्ण के रोग का नाश होता है। अथवा मुस्त और गुड की गुटिका बनाकर उसे मुख में रखे और चुसता रहे तो भी तृष्णा की शांति हो जाती है।

उरूस्तम्भ रोग की चिकित्सा :- यदि उरूस्तम्भ का रोग हो तो उसका विनाश यवान्न की विकृति, यूप शुष्क लकज, शाक, पटोल और वेत्र का अर्क लेने से हो जाता है।

मूँग, अरहर, मसूर के तिलों के सहित जाँगल रस वाले, सैंधव से युक्त घृत, द्रक्षा, शुंठि (सौंठ), आमलक (आँवला) और केकोल से उत्पन्न होने वाले यूपों से पुराने गेहूँ यव और शालि के अन्न का अभ्यास करना चाहिए।

बिसर्प रोग की चिकित्सा :- जो बिसर्प रोग वाला हो, उसे मिस्री के साथ क्षौद्र, मृद्धिका और अनार का जल लेना चाहिए।

नासा रोग की चिकित्सा :- दूर्वा (दूब) से प्रसाधित (बनाया गया) घृत नासा के रोग में लाभप्रद होता है। भृंगराज (भँगरी) के रस में अथवा धात्री के रस में सिद्ध किया हुआ तेल भी लाभप्रद होता। मूर्धजन्तू-द्रव समस्तरोगों में नस्य लाभ देने वाला होता है।

दाँतों के मजबूत करने की पद्धति :- शीतल जल और अन्न का पान तथा हे विप्र! तिलों का भक्षण दाँतों को मजबूत करने वाला होता है।

शिरो रोग की चिकित्सा :- शिरो रोग के विनाश करने के लिए धात्री (आँवला) के फल और घृत का लेपन उत्तम होता है। स्निग्ध (चिक्कणता से युक्त) और उष्ण होना चाहिये।

कर्णशूल की चिकित्सा :- तेल अथवा वस्तमूल कानों में डालने के लिए परम उत्तम होता है। हे द्विज! सर्व शुक्त कर्णशूल के विनाश के लिए होते हैं।

क्षत और श्वित्र की चिकित्सा :- पर्वत की मृत्तिका, चंदन, लाक्षा और मालती के पुष्प की कली इन सबको संयुक्त करके जो वर्ति बनाई जाती है वह क्षत और श्वित्र के हरण करने वाली है।

नेत्रों के रोगों की चिकित्सा :- त्रिफला से युक्त तुत्थ (तूतिया) का व्योष तथा जल समस्त प्रकार के नेत्रों के रोगों का शमन करने वाला होता है तथा रशाञ्जन, त्याज्य, भृष्ट और शिलापिस्ट लोध, कांजी और सेंधव के द्वारा आश्च्योतन समस्त नेत्रों के रोगों का विघात करना अभीष्ट है तो सदा त्रिफला का प्रयोग करना चाहिये।

वृष्य औषधि :- शतावरी के रस में सिद्ध क्षीर और घृत में सिद्ध वृष्य कहे गये हैं। कलविङ्क और माष (उडद) क्षीर और घृत में सिद्धवृष्य होते हैं।

बाल को काला करने की औषधि :- मधूक आदि के रस से युक्त त्रिफलावाली पलित (बालों का सफेद हो जाना) का नाश करेन वाली होती है। जो शरीर में झुर्रियाँ हो जाती हैं वे वली कही जाती हैं।

भूतदोष नाशक औषधि :- वचा (वच) के द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत हे विप्र! भूतों के दोष को मिटा देने वाला होता है।

बुद्धिप्रद औषधि :- कव्य बुद्धि के प्रदान करने वाला तथा समस्त अर्थों का साधन करने वाला है।

वातरोग की चिकित्सा :- रास्ना सहचरी के द्वारा जो तेल बनाया जाता है वह वात के विकार वाले रोगियों को लाभदायक हुआ करता है।

व्रणरोग की चिकित्सा :- जो अन्न अभिष्यन्दि नहीं है वह व्रण रोगों में लाभप्रद कहे जाते है।

पाचन कारक :- सक्तु पिण्डी तथा अम्ल (खट्टे) पाचन क्रिया करने में प्रशस्त होते हैं। पक्व से भेदन करने में, प्रशस्त रोषन में, नीम का चूर्ण लाभदायक होता है।

स्वास्थ्य के लिए इन्जैक्शन तथा प्राणी रक्षा :-

तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः।
सूचिका च तथा रक्षा प्राणिनां तु सदाहिता।। 55

इसी प्रकार से सूची का (इन्जैक्शन) उपचार भी होता है और विशेष करके बलिकर्म होता है एवं सूतिका भी होती है। कुछ भी कहना पडे किंतु सदा प्राणियों की रक्षा करना हितकर होता है।

सर्प विष चिकित्सा :- जिसे सर्प ने काट लिया हो उसे नीम के पत्तों का खाना बहुत हितकर होता है। ताल निम्बदल पुराना तेल और ताजा घृत केश्य होता है।

बिच्छू विष चिकित्सा :- बिच्छू के द्वरा काटे हुये के लिए धूप, शिखि पत्र, घृत हो अथवा आक के दूध के साथ पिसे हुये ढाक के बीज। काले बिच्छू के दंशन का पीडित हो तो भी फल संयुक्त कल्याणकारिणी होती है।

कुत्ता विष चिकित्सा :- आक का दूध, तिल, पलल और गुडवे समभाग होकर खावें, दुर्वार कुत्ते का विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अर्थात् कुत्ते के विष पर विजय प्राप्त हों जाती है।

विभिन्न विष चिकित्सा :- समान तंडुलीय त्रिवृत् के मूल को घृत के साथ पी कर सर्प कीट के विषों को, चाहे वह कितना ही सबल क्यों न हो शीघ्र नष्ट कर देता है। चंदन पद्मक, कुष्ठ और लतांबु, उशीर तथा पाटल, निर्गुंडी, सारिवा और सेल ये वस्तुयें कुता के विष से होने वाले रोग को नष्ट कर देता है।

विरेचनादि औषधि :- हे द्विज! गुड और नागरक शिरो विरेचन में प्रशस्त कहा गया है। वस्ति कर्म में जो स्नेह पान होता है उसमें तेल उत्तम है घृत उत्तम नहीं होता है। परवहिन का स्वेदन करना चाहिये। शीत जल से स्तंभन पर होता है। रेचन में त्रिवृत्त श्रेष्ठ होता है। वमन में मदन होता है। वस्ति, विरेक, वमन, तेल-घृत और वात-पित्त और बलासाओं की क्रम से परम औषधि है।

-: सेवामृतम् :-

रोगी की सेवा, औषधि दान प्रायोगिक अहिंसा, करुणा, परोपकार, त्याग वैयावृत्ति, परदुःखकातरता है।

परिच्छेद-12

सर्वरोगहर औषधि

भगवान् धनवन्तरी ने कहा-मानसिक व्याधियाँ शारीरिक, आगन्तुक और सहज चार प्रकार की हुआ करती हैं। जो शारीरिक व्याधियाँ हैं वे ज्वर एवं कुछ आदि अनेक होती हैं। क्रोध आदि मानसिक रोग कहे गये हैं।

जो विघात से उत्पन्न हो जाते हैं वे आगन्तुक रोग कहे जाते हैं। भूख और वृद्धता आदि सहज रोग हैं जो सभी को अपने समय आने पर हुआ करते हैं।

मानसरोग चिकित्सा :- जो मानस क्रोध, चिंता आदि अनेक रोगों से पीडित होते हैं उनका निवारण करने के लिए भगवान् के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये। इससे मानसिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

अन्न से रसादि :- अब वात, पित्त और कफ ये तीन महादोष दौड लगाया करते हैं। उनके विषय में श्रवण करो। हे सुश्रुत ! जो अन्न खाया जाता है वह खाया हुआ अन्न दो प्रकार से पक्काशय में जाया करता है। उसका एक अंश तो किट्ट के रूप में हो जाता है और दूसरा अंश रस के रूप में परिणत होता है अर्थात् जो भी अन्न खाया गया है वह पक्काशय में पहुँचकर दो भागों में बँट जाता है। जो उनका किट्ट भाग है वह विष्ठा, मूत्र और पसीना के रूप वाला होता है। नासा (नाक) का मल, कान का मैल और देहमल कहा गया है। जो दूसरा रस का भाग है वह रुधिर के रूप को धारण किया करता है। रस से रक्त और रक्त से माँस, मांस से मेद और मेद से अस्थि (हड्डी) इनकी क्रम से उत्पत्ति हुआ करती है। अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है जिससे राग और ओज बनता है।

चिकित्सा पद्धति :- देश, व्याधि बल, शक्ति, काल और मानव की प्रकृति इन सबको भली-भाँति जानकर वैद्य को भेषज (औषध) की ताकत को भी समझ कर चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सा के आरम्भ में वैद्य को रिक्ता तिथि भौमवार, मंद, दारुण और उग्र नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिये। अर्थात् उक्त समय, दिन और नक्षत्रों में चिकित्सा का आरम्भ नहीं करना चाहिये। भगवान् की अर्चना करके विद्वान् वैद्य को औषध का प्रारंभ करना चाहिये। जब औषध को देना प्रारंभ करें, तब समस्त ऋषिगण औषध समूह आदि तेरी रक्षा करें, ऐसा कहना चाहिये। ऋषियों के रसायन की भाँति देवों के अमृत की तरह और उत्तम नागों की सुधा के सदृश यह औषध तुम्हारे लिए होवे।

पित्तादिकारक देश :- जिस देश में बहुत से वृक्ष हों और अत्याधिक जल वाला हो वह देश सात श्लेष्मा (कफ) करने वाला होता है। ऐसा देश 'अनूप' इस नाम से विख्यात होता है। इसके विपरीत जो देश होता है वह 'जंगल' कहा गया है। कुछ वृक्षों वाला जो देश होता है वह 'साम्रण' इस नाम वाला कहा जाता है। जंगल देश में पित्त की बहुलता हुआ करती है, वह साधारण कहा गया है।

पित्तादि की प्रकृति :- वायु रुक्ष-शीत और चल होता है। पित्त उष्ण होता है, तीनों कटु हैं। स्थिर अम्ल और स्निग्ध अधर वलास कहा जाता है। इनके समान रहने पर तो वृद्धि (बढाव) होती है और जब ये वात-पित्तादि विपरीत हो जाते हैं तो विपर्यय अर्थात् वृद्धि का अभाव होता है।

पित्तदिकारक वस्तु :- अम्ल (खट्टा) और लवण (खारी) स्वाद वाले जो रस होते हैं वे श्लेष्मल अर्थात् कफ की वृद्धि करने वाले होते हैं तथा वायु के नाश कारक हैं।

कडवे आदि रसों के गुण :- कटु (कडवे), तिक्त (चरपरे) और कषाय (कसैले) स्वाद वाले रस आयु बढाने वाले तथा कफ के नाश करने वाले होते हैं। कटु, अम्ल और लवण पित्त रस के बढाने वाले होते हैं। तिक्त, मधुर और कषाय रस पित्त के नाशक हुआ करते हैं। यह केवल रस का ही गुण नहीं होता है किंतु उसके विपाक का यह गुण हुआ करता है। जो वीर्योष्ण होते हैं वे कफ और वात के नाश करने वाले होते हैं। जो शीत होते हैं वे पित्त के नाशक होते हैं। हे सुश्रुत! वे प्रभाव से कर्म किया करते हैं।

ऋतु के अनुकूल पित्तादि परिणमन :- शिशिर, बसंत और निदाघ (ग्रीष्म) में क्रम से कफ चय (इकट्ठा होना), प्रकोप (कुपित होना) और उपशम (शांत होना) बताया गया है। हे सुश्रुत ! ग्रीष्म, वर्षा और रात्रि में तथा शरद् ऋतु में वायु के क्रम से संचय, प्रकोप और उपशम हुआ करते हैं। मेघों के समय में शरद् ऋतु के और हेमन्त में क्रम से पित्त का चय-प्रकोप और प्रशमन होता है।

विभिन्न ऋतुओं के विभिन्न गुण :- वर्षा आदि तथा हेमन्तादि तीन विसर्ग होते हैं। शिशिरादि तथा ग्रीष्मान्त तीन ऋतु आदान में होती है। विसर्ग, सौम्य तथा आदान आग्नेय कहा गया है। चंद्रमा वर्षादि तीन ऋतुओं में विचरण करता हुआ पारी से अम्ल, लवण और मधुर रसों को यथाक्रम उत्पन्न किया करता है। शिशिरादि ऋतुओं में सूर्य विचरण करता हुआ पर्याय (पारी) से रसों का विवर्धन किया करता है। तिक्त, कटु और कषायों को क्रम से जैसे रजनी बढाती है वैसे ही बल भी इसी प्रकार से बढता है। मनुष्यों के बल हीयमान होने पर इसी तरह से कम हो जाया करते हैं। रात्रि भुक्त दिनों का

तथा अवस्था का आदि मध्य और अवसान में कफ, पित्त और वायु प्रकुपित होते हैं और कोप के आदि काल में उनका संचय हुआ करता है। पहले संचय फिर प्रकोप और प्रकोप के उत्तर समय में उनका उपशमन हुआ करता हैं।

अति भोजन से रोगों की उत्पत्ति :- हे विप्र ! अत्यधिक भोजन कर लेने से और भोजन न करने से समस्त रोग उत्पन्न हुआ करते है।

वेगों के धारण करने से रोगों की उत्पत्ति :- वेगों के उदीरण और धारण करने से भी रोगों की उत्पत्ति होती है ।

भोजन की पद्धति :- कुक्षि (उदर) के दो अंश (भाग) अन्न से भरे और उसका एक भाग जल से पूरित करना चाहिये। चौथा भाग वायु आदि के आश्रय के लिये खाली रखना चाहिये। तात्पर्य यह है कि आधा पेट अन्न से ही भरें।

औषध की पद्धति :- व्याधि का जो निदान (मूल कारण का ज्ञान) हो उसके विपरीत औषधि होनी चाहिये।

वात्तादि प्रकृति तथा प्रकृतिवान् :- नाभि के ऊपर और नीचे गुद श्रेणियाँ हैं। यही वलास-पित्त और वात का शरीर में स्थान बताया गया है तो भी ये शरीर में सर्वत्र गमन करने वाले होते हैं और वायु विशेष रूप से देह में रहा करती है।

शरीर के मध्य में हृदय होता है, वही मन का स्थान कहा जाता है। कृश, थोडे बालों वाला, चपल बहुत बाते करने वाला विषमानल तथा स्वप्न में आकाश में विचरण करने वाला वात प्रकृति का कहा जाता है। असमय में ही सफेद बालों वाला क्रोधी, शरीर में पसीना आनेवाला, मिठाई से प्यार करने वाला और स्वप्न में दीप्ति से युक्त को देखने वाला मनुष्य पित्त प्रकृति का कहा जाता है। मजबूत अङ्गों वाला स्थिर चित्त वाला, अच्छी कांति से युक्त, स्निग्ध केशों वाला और स्वप्न में शुद्ध जल को देखने वाला पुरुष कफ की प्रकृति वाला होता है। इसी प्रकार से मनुष्य तामस, राजस और सात्विक बताये गये हैं।

वातादि प्रकृति प्रकुपित होने का कारण :- हे मुनि शार्दूल ! मनुष्य वात-पित्त और कफ के स्वरूप वाले हुआ करते हैं। व्यवाय (मैथुन) से रक्त पित्त होता है। बहुत बडे काम में प्रवृत्ति करने से तथा कंदन के भोजन करने से और शोक से शरीर में वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेष दाह करने वाले उल्क (उल्बण) और उष्ण अन्न तथा मार्ग सेवन करने वालों का पित्त प्रकुपित हो जाया करता है। हे द्विज ! भय से भी पित्त प्रकुपित होता है। अधिक जल पीने वाले, भारी अन्न के भोजन करने वाले तथा खाकर शयन करने वाले पुरुषों का कफ प्रकुपित हो जाता है। जो आलसी होते हैं उनका भी कफ प्रकुपित होता है। वायु आदि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले रोगों को भलीभाँति समझकर जो कि

लक्षणों द्वारा जाने जाते हैं, शमन करें।

वातादि रोगों के लक्षण तथा उपशमनोपाय :- अस्थि का भंग, मुख का कसैला स्वाद, मुख का सूखापन, जम्भाइयों का आना, रोम हर्ष (रोंगटे खडे होना) ये सब वातजन्य व्याधि के लक्षण होते हैं। नख, नेत्र और शिराओं का पीलापन, मुख का कडुआ होना, तृष्णा (प्यास अधिक लगना), दाह और उष्णता का होना ये सब पित्त के प्रकोप से उत्पन्न व्याधि के लक्षण होते हैं। आलस्य का रहना, प्रसेत भारीपन, मुख का मीठा स्वाद होना तथा गर्म-गर्म वस्तुओं का सेवन करने की इच्छा रहना ये सब कफ के प्रकोप से समुत्पन्न रोग का लक्षण होता है। स्निग्ध और उष्ण अन्न, अभ्यंग करना, तैल और पानादि वायु को शांत करने वाले होते हैं। घृत, क्षीर और मिस्री आदि तथा चंद्रमा की किरणों का सेवन पित्त का शमन करने वाले हैं। मधुर रस के साथ त्रिफला, तेल और व्यायाम आदि कफ के प्रकोप से होने वाले रोग का शमन किया करते हैं। समस्त रोगों की प्रशांति के लिए भगवान् का ध्यान और पूजन होता है।

रसादि का लक्षण :- रस, वीर्य और विपाकों के ज्ञान रखने वाले मनुष्य अर्थात् वैद्य को नृप आदि की रक्षा करनी चाहिये। मधुर, अम्ल और लवण रस सोम से उत्पन्न कहे गये हैं। कटु, तिक्त और कषाय रस हे महान् भुजाओं वाले आग्नेय ! अर्थात् अग्नि से समुत्पन्न कहे गये हैं। द्रव्य का कटु, अम्ल और लवण के स्वरूप वाला तीन प्रकार का विपाक होता है। दो प्रकार से द्रव्य का शीत तथा उष्ण वीर्य कहा गया है। हे द्विजों में उत्तम ! औषधियों का प्रभाव निर्देश करने के योग्य नहीं होता है। मधुर, कषाय और तिक्त रस शीत वीर्य वाले बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त शेष समस्त रस उष्ण वीर्य कहे गये हैं। गूडूची (गिलोय) तिक्त होते हुए भी अत्यन्त वीर्य होने के कारण उष्ण होती है। हे मानद ! वह उष्ण कषाय होते हुए भी पथ्य (हितकर) होती है। माँस मधुर होते हुये भी उष्ण ही उष्ण कहा गया है। लवण और मधुर विपाक में मधुर ही कहे गये हैं, तथा आम्लोष्ण कहा गया है। शेष समस्त रस कटु विपाक वाले होते हैं। वीर्य के पाक में विपर्यस्त प्रभाव से वहाँ ठीक निश्चय होता है। मधुर रस भी रस पाक के होने पर कटु हो जाता है जो कि क्षौद्र बताया गया है।

रसादि के गुण :- जो रस सोम्य होते हैं वे प्रायः धातु के बढाने वाले जानने चाहिये। विशेष रूप से जो मधुर होते हैं वे धातु के वर्धक जानने योग्य होते हैं। धातुओं के दोषों के समान गुण वाला जो द्रव्य होता है वह ही वृद्धि के करने वाला समझना चाहिये। इनके विपरीत जो होगा वह क्षय करने वाला ही होता है।

सेवनीय और असेवनीय :- आहार, मैथुन और निद्रा ये देह के तीन उपक्रम बताये गये हैं। इनमें सर्वथा यत्न करना चाहिए। इनके न सेवन करने और अधिक सेवन करने से

अत्यन्त नाश की प्राप्ति हो जाती है। जो क्षय है उसका बृह्म (वृद्धि) करना चाहिये। जिसका स्थूल देह हो उसका कर्षण करना अभीष्ट होता है जिसका मध्यकाय अर्थात् मध्यम श्रेणी का न कृश और न स्थूल शरीर होता है उसका रक्षण करना चाहिये। ये तीन ही के भेद बताये गये हैं। दो प्रकार के उपक्रम बताये गये, एक तर्पण और दूसरा अतर्पण। हित अर्थात् लाभप्रद वस्तुओं को खाने वाला मित अर्थात् जितना देह के अनुसार आवश्यक है उतना ही खाने वाला और जीर्ण होने पर या जीर्ण होने के योग्य वस्तुओं को खाने वाला होना चाहिये।

वृक्षायुर्वेद :- प्लक्ष (पाखर) का वृक्ष उत्तर में शुभ होता है। प्राची/पूर्वदिशा में वटका वृक्ष योग्य दिशा में आम्र का, पश्चिम में अश्वत्थ (पीपल) क्रम से होना चाहिये। दक्षिण दिशा में समीप में ही काँटेदार वृक्ष होने चाहिएँ। ऐसा उद्यान पास में हो तथा पुष्पित तिलों के पेड भी रहे। ब्राह्मण और चंद्रमा का अर्चन करके वृक्षों का आरोपण तथा ग्रहण करना चाहिये। पाँच ध्रुव, वामव्य, हस्त, प्राजेश वैष्णव तथा मूल नक्षत्र में द्रुमों के रोपण करने में प्रशस्त होते हैं। नदी वाहों में प्रवेश करते हुये पुष्करिणी बनवानी चाहिये। हस्त, मघा, मैत्र, आद्य, पुष्प, सवासन, वारूप, तीनों उत्तरा ये नक्षत्र जलाशय के समारम्भ में उत्तम हैं। भगवान् की भली-भाँति अर्चना करके इस कर्म का आचरण करें। अरिष्ठ अशोक, पुनांग, शिरीष, प्रियंगु, कदली (केला) जामुन, बकुल, दाडिम (अनार) इन वृक्षों को सांयकाल तथा प्रातःकाल में और शीतकाल में शाम के अन्त में, दिनान्तर में तथा वर्षा रात्रि में जब भूमिका शोषण हो जावे उस समय में रोपे हुए पेडों को सींचना चाहिये। बीस हाथ के अन्तर में उत्तम आरोपण होता है। मध्यम सोलह हाथ के अन्तर वाले माने जाते हैं। एक स्थान से अन्य स्थान का बारह हाथ का अन्तर जो होता है वह अधम श्रेणी का कहा गया है। घने वृक्षों का रोपण करना विफल होता है। आदि में ही शस्त्र के द्वारा इनका शोधन कर देना चाहिये। बिडंग और घृत पंक से युक्त इनका सेवन ठण्डे जल से करें। जब फलों का नाश हो जावे तो कुलत्थ, माष (उर्द), मूद्ग (मूँग), यव (जौ) और तिलों के द्वारा घृत एवं शीतल जल से सेवन करना फलों एवं पुष्पों के लिए सदा हितकर होता है। अविकाज अर्थात् भेड और बकरी की मैंगनियों का चुरा, यवों का चूर्ण और तिल तथा जल सात रात्रि तक डालें। इस प्रकार से उत्सेक करने से समस्त वृक्षों के फल और फूल आदि की वृद्धि हुआ करती है। जल से सींचने से वृक्षों की वृद्धि हुआ करती है।

सर्वेसामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम्।

समस्त वृक्षों का रोपण साधारणतया रोगों का मर्दन करने वाला होता है। वृक्षों से विभिन्न प्रदूषण दूर होने से विभिन्न रोग दूर होते हैं।

परिच्छेद-13

नानारोगहरण औषधियाँ

विभिन्न बालरोग चिकित्सा- सिंही, शटी दोनों प्रकार की हल्दी, वत्सक के क्वाथ का सेवन करने से छोटे बच्चों के सब प्रकार के अतिसार (दस्त) में तथा स्तन (माँ का दूध) के दोषों में प्रशस्त अर्थात् लाभप्रद होता है।

शृंगी, कृष्णा और अतिविषा का चूर्ण मधूरस के साथ चाटना चाहिये। एक अतिविषा ही ऐसी औषधि है कि छोटे बच्चे की खाँसी, सर्दी और ज्वर का हरण कर दिया करती है। बालकों को घृत के साथ बच का सेवन करना चाहिये। यह दूध के साथ भी सेवन करनी चाहिये। तेल से युक्त यष्टिका अथवा शंखपुष्पी (शंखाहूली) को बालक क्षीर से युक्त करके पीवे तो लाभप्रद है। इसके सेवन करने से वाणी, रूप, सम्पत् आयु और मेधा तथा श्री इनकी बालक में वृद्धि होती है। वच अग्निशिखा, बासा, शुंष्ठि, कृष्ण निशा (हल्दी) इन औषधियों का यष्टि और सैन्धव (नमक) के साथ बालक प्रातःकाल में सेवन करें अर्थात् पीवें तो मेधा (बुद्धि) का वर्धन करने वाला होता है। त्रिफला, भृंग और विश्व के रसों में मधु और घृत और मेषी के तथा गोमूत्र में सिक्त छोटे बच्चों के रोग में बहुत ही हितकारी होता है। नासिका से आने वाले रक्त का निवारण करने के लिये नस्य से भी अधिक उत्तम दूर्बा का रस होता है।

दाँत, जिभादि रोग की चिकित्सा :- जातिपत्र, फल, व्योष, कवल, मूत्रक और निशा (हल्दी) ये वस्तुएँ दुग्ध के क्वाथ में और अभया (हरीतरी) के कल्क में सिद्ध किया हुआ तैल दाँतो की वेदना को दूर करता है। धान्याम्बु नारियल गोमूत्र, क्रमक विश्व का क्वाथ बनाकर कबल (कुल्ला) करे तो जिह्वा की व्याधि शान्त हो जाती है। निर्गुण्डी के रस से लांगली के कल्क में साधित किया हुआ तेल गलगण्ड और गण्डमाला की नस्य कर्म से नाश किया करता है। अर्क (आक), पूतीक, स्नुही (थूहर) रूंधात जातिक को गौमूत्र से उद्धर्त्तन करें इससे त्वचा के समस्त रोगों का नाश हो जाता है।

कुष्ठरोग की चिकित्सा :- तिलों के साथ वाकुची खाने से एक वर्ष में कुष्ठ रोग का नाश हो जाता है। तैल और गुड में पिण्डी की हुई भल्लात कुष्ठ को जीतने वाली एवं पथ्य होती है।

जठररोग चिकित्सा :- जठर के रोग वाले पुरूष को बहुत बार स्नुक्क्षीर से भावित करके कृष्ण का सेवन करना चाहिए।

अरूचिरोग नाशक :- पथ विडंग, अग्नि से व्योषकल्क से युक्त अरूचि के रोग का नाश होता है ।

कामला रोग चिकित्सा :- फलत्रय अर्थात् त्रिफला, अमृत (गिलोय, वासा (अडूसा) तथा तिक्तभूनिम्ब से बनाया हुआ क्वाथ मधुर रस (चासनी) के साथ कामला के रोग का हनन कर देता है।

रक्तपित्त चिकित्सा :- जिस मनुष्य को रक्त पित्त की बीमारी हो उसे मिस्त्री और चासनी के साथ वासा (अडूसा) का स्वरस पीना चाहिये अथवा बरी, द्राक्षा (मुनक्का), बला और सौंठ से साधित पय पृथक् पीना चाहिये।

क्षयादि रोग की औषधि :- बरी विदारी कन्द, पथ्या, तीनों बला (अतिबला, नागबला और महाबला) और वासा को कुत्ता से काटा जाने वाला और क्षय रोग वाला चासनी और घृत के साथ चाटे तो रोग नष्ट हो जाता है।

भगन्दर की चिकित्सा :- त्रिवृता, जीवन्ती, दन्ती, मञ्जिष्ठा (मजीठ), दोनों प्रकार की हल्दी, तार्क्षज और नीम के पत्ते इनका लेप भगन्दर के लिये लाभदायक होता है।

व्रण की चिकित्सा :- श्यामा, यष्टि, निशा (हरिद्रा) लोध, पदाक, उत्पल और चन्दन का मिर्चों के साथ शृत किया हुआ तैल, क्षीर व्रण का रोहण करने वाला होता है। कुम्भीसार को आग से दग्ध करके पय से युक्त कर व्रण का लेप करें। वही नारिकेलरजो घृत से व्रण को नाश कर देती है।

क्षत की चिकित्सा :- श्री कार्पास के दलों के भस्म और फलोपलवणा लिशा (हल्दी) इसकी पिण्डी द्वरा स्वेदन तथा ताम्र में वह तैल क्षतों की औषधि है।

अतिसार की चिकित्सा :- विश्वाजमोद सिन्धन्थ चिंचा की छाल के समान अभया (हर्र) मट्ठा या जल के साथ पीने से अतीसार का नाश होता है। वत्सका, अतिविषा, विश्वा, विल्व, मुस्त का शुत जल साम में, पुराने अतिसार में और रक्त के साथ शूल के रोग में पिला देना चाहिये।

शूल की चिकित्सा :- अंगारे से दग्ध किया हुआ सुगत सिन्धु को गर्म जल के साथ शूल वाला पीवे। अथवा उसके साथ सिन्धु हिंगु (हींग) कणा और अभया को लेना चाहिये।

छालों की चिकित्सा :- पाठा, दार्वी और जाती के दल को द्राक्षा, मूल

और तीनों प्रकार की बलाओं के साथ साधित मधुर रस के साथ कवल से मुख के अन्दर जो पाक होता है उसका हरण करने वाला होता है। अर्थात् मुँह के अन्दर होने वाले छालों को नष्ट करने वाला है।

मूत्र कृच्छ रोग की चिकित्सा :- पथ्या, गोखरू, मधुर रस के सहित पीने से मूत्र कृच्छ रोग को दूर भगा देता है।

शर्कराश्म की चिकित्सा :- बाँस की छाल और वरूण का क्वाथ शर्कराश्म का नाशक होता है।

गुल्मरोग की चिकित्सा :- सौवर्चला, अग्नि और हींग को सदीप्य करके रस से युक्त करे अथवा विड्दीप्यमान से युक्त करें और उस तक्र (मट्ठा) का सेवन करें तो गुल्म के रोग का हरण हो जाता है।

बिसर्प की चिकित्सा :- धात्री, पटोल पत्र और मुद्ग का क्वाथ घी के साथ सेवन करने से बिसर्प का नाश हो जाता है।

विरेचन तथा वमन कारक :- गुड, शिग्रु और त्रिवृत् के साथ सैन्धवों चूर्ण से युक्त त्रिवृता फल का काढा गुड के सहित विरेचन करने वाला होता है। बचा फल के कषाय से उत्पन्न जल वमन कारक होता है।

वली एवं पलित की चिकित्सा :- सौ पल त्रिफला, भृंगराज से युक्त, विडंग और लोह चूर्ण दश भाग शतावर, गिलोय और अग्नि के पच्चीस भाग को चासनी घृत और तिलज के साथ लेहन करें अर्थात् चाटे तो मनुष्य वृद्धावस्था के कारण होने वाली वली एवं पलित (सफेदी) से रहित हो जाता है। वह आदमी समस्त प्रकार से रोगों से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है।

सर्वरोगहर औषधि :- मधुर रस और शर्करा से युक्त त्रिफला सभी रोगों का हनन करने वाली होती है।

दीर्ध आयु की औषधि :- मिस्त्री, मधुर रस और घृत से युक्त कृष्णा के सहित त्रिफला और पथ्या, चित्रक तथा सौंठ (गिलोय) और मुसली का चूर्ण गुड के साथ खाने पर रोगों का हरण होता है और तीन सौ वर्ष आयु करने वाला है।

परिच्छेद-14

मन्त्ररूपौषध

इस अध्याय में मंत्ररूप औषधियों का वर्णन किया जाता है। भगवन् धन्वन्तरी ने कहा - ॐ कार आदि आयु और आरोग्य के करने वाले तथा स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले होते हैं। ॐ कार परम मंत्र है। इसका जाप करके मानव अमर हो जाया करता है। इस मंत्र से देव और असुर सब निरोग और श्री युक्त हुए थे। प्राणियों का उपकार तथा धर्म तथा महौषध, धर्म और अच्छे के करने वाला धर्मी इन धर्मों से मनुष्य निर्मल अर्थात् शुद्ध हो जाता है।

मृतसंजीवनकर सिद्धयोगः

श्री धन्वन्तरी भगवान् बोले - अब मैं फिर जो सिद्ध योग है, उन्हें बताता हूँ जो कि मृत को संजीवन कर देने वाले होते हैं और आत्रेय के द्वारा कहे हुए दिव्य तथा समस्त व्याधियों के विमर्दन करने वाले हैं। आत्रेय ने कहा - बिल्व आदि पंचमूल का क्वाथ वातिक ज्वर में लाभप्रद होता है। पिप्पली मूल, गुडूची (गिलोय) और विश्वज पावन होता है। आमलकी, अभया, कृष्णा और वहिन (चीता) ये सब प्रकार के ज्वर का अन्त करने वाले हैं। बिल्व, अग्नि, मन्थ, स्योनाक, काश्मरी, पाटाला, स्थिरा, त्रिकंटक, प्रश्चिपर्णी, बृहती, कंटकारीका ये सब ज्वर के विपाक में पार्श्वों की पीडा, खाँसी को दूर करती है। कुशा का मूल, गिलोय, पर्पटी, मुस्तकिरात और विश्वभेषज इनमें वात-पित्त जन्य ज्वर में देना चाहिये। यह पंचभद्र-इस नाम से कहा गया है। त्रिव्रत, मिशाला, कटुका, त्रिफला, आरग्वध के द्वारा क्षार सहित भेदन करने वाला क्वाथ समस्त ज्वरों का हटाने वाला पीना चाहिये। देवदारु, बला, वासा, त्रिफला, व्यौष, पद्मक और वायविडंग का चूर्ण और समान मिस्री यह पंचकामाजित् होता है। दशमूल, शटी, रासना, पिप्पली, बिल्व, पौषकर, श्रृंगी आमलकी, भार्गी, गुडूची और नागवल्ली के द्वारा विधि पूर्वक बतायी हुई यवागु अथवा सिद्ध किया हुआ कषाय मनुष्य को खाँसी, हृदय रोग, ग्रहणी, पार्श्व, हिचकी और श्वास की शांति के लिए पीना चाहिये।

अरुचि रोग की औषधि :- कारव्याजाजी, मरिच, द्राक्षा, वृक्षाम्ल, दाडिम, सौवर्चल, गुड और क्षौद्र यह समस्त प्रकार की अरुचि के रोग का नाश करने वाला होता है।

अपस्मार की औषधि :- शंखपुष्पि (शंखाहली), वच, कुष्ठ और ब्राह्मी बूटी का

स्वरसे सिद्ध किया हुआ पुराने अपस्मार (मृगी) रोग का नाशक है तथा उत्तम मैध्य एवं उन्माद को हटाने वाला होता है।

कुष्ठरोग की औषधि :- पंचगव्य- घृत उसी प्रकार के अभ्यंग से युक्त हो तो कुष्ठ (कोढ) रोग का नाशक होता है। पटोल पत्र, त्रिफला, नीम, गिलोय, धाबनी, वृश, करंज इससे सिद्ध किया हुआ घृत कुष्ठ रोग के लिए वज्र के समान करने वाला है। नीम, पटोल, व्याघ्री, गिलोय, वासक इनके एक-एक के दस पल भाग लेकर भली-भाँति कूट लेवे, द्रोण मात्र जल में इसको पकावें। जब चतुर्थ भाग शेष रहे तो उतारकर एक प्रस्थ घृत उसके साथ त्रिफला भाग से युक्त पाचन करें, यह पंचतिक्त इस नाम से प्रसिद्ध है। यह बनाया घृत कुष्ठ (कोढ) के रोग का नाश करने वाला होता है। यह अस्सी प्रकार के जो वायु से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं उनका और चालीस प्रकार के पित्त के दोष से समूत्पन्न रोगों को एवं बीस प्रकार के कफ दोष से होने वाले रोगों का तथा खाँसी, पीनस, बवासिर और सब प्रकार के व्रणादि को नष्ट किया करता है।

यह उपर्युक्त महान् योगराज कहा गया है। जिस प्रकार अंधकार का नाशक सूर्य होता है वैसे ही यह रोग का नाश करने वाला होता है। त्रिफला के कषाय से और भृंगराज (भँवरा) के स्वरस से उपदश (आतिश) के व्रणों को धोना चाहिये। पटोदर के चूर्ण से अथवा दडिमाग्रज (दाडिम पुष्प) का गुंठन करें। गज के और त्रिफला के चूर्ण से सैंधव के सहित त्रिफला अयोरज, यष्टी, मार्कव, उत्पल और मिर्च (गोल मिर्च) से तेल का पाचन करें, उस तेल से शरीर का अभ्यंग करें तो छर्दि के रोग का नाश हो जाता है। दूध के सहित मार्कव रसों को दो प्रस्थ मधुर रस कोत्पलों के द्वारा कडूवें तेल को पकावे फिर उसका नस्य बनाले, इससे पलित (बालों की सफेदि) का नाश हो जाता है अर्थात् सफेद बालों की जगह काले बाल हो जाते हैं। नीम, पटोल, त्रिफला, हर्ड, बहेडा, आँवला, गिलोय, खदिर, वृष तथा भूनिम्ब, पाठा, त्रिफला, गिलोय और रक्त चंदन ये दो योग है। जो ज्वर का हनन करते हैं और कुष्ठ, व्रण तथा मसूरीकाओं का भी नाश करते हैं। पटोल, अमृत, भूनिम्ब, वासारिष्ठ, पर्नट, खदिर और अब्ज इनका क्वाथ (काढा) विस्फोट से होने वाले ज्वर को नष्ट या शांत कर देता है। दशमूली छिन्नरुहा, पथ्वा, दारु पुनर्नवा, षिगु और विश्वजित ये वस्तुयें ज्वर, विदघ्रि और शोध में लाभप्रद होती है। मधूक और नीम के पत्तों का लेप वृणों का शोधन कर देता है।

त्रिफला, खदिर, दार्वी, न्यग्रोध, अतिबला, कुशा, नीम और मूलक के पत्तों का कषाय भी व्रणों के शोधन करने में हितकारी हुआ करता है। घातकी चन्दन वलासमंगा मधुक उत्पल दार्वीभेद से युक्त करके लेप घृत के साथ किया जावे तो व्रणों

का रोपण हो जाता है। गूगल, त्रिफला, व्योष समान भागों के साथ घृत के योग से नाडी का दृष्ट व्रण, शूल और भगन्दर का दु:ख दूर हो जाता है।

वातरोग हर औषधि :- त्रिकुटा और त्रिफला का क्वाथ क्षार लवण के साथ पान करें तो कफ वातात्मकों में विरेचक होता है। तथा कफ की वृद्धि का नाश कर देता है। पिप्पली मूल और पिप्पली, वच, क्रित्रक और नागर से क्वथित किये हुये को पीवें तो आत्मवात का विनाश होता है। रास्ना, गिलोय, अरन्ड, देवदारू, महौषध को समस्त अंग में वात के हो जाने पर पीना चाहिये। जब कि आम के सहित वायु सन्धि, अस्थि और मज्जा से पहुँच गया हो दशमूल का कषाय पान के रस के साथ पीना चाहिये।

सोंठ और गोखरू का काढा रोज प्रात:काल में सेवन करने से आम से युक्त वात कमर का दर्द, पाण्डु रोग का नाश होता है। जड और डालियाँ सब प्रसारिणी का तेल लेकर पकावें, गिलोय का स्वरस, कलक, चूर्ण अथवा क्वाथ अधिक समय तक सेवन करने से वात शोणित से मुक्ति होती है। पिप्पली अथवा वर्धमान को पथ्य या गुड के साभ सेवन करना चाहिये। मन्दोष्ण गिलोय और त्रिफला के जल के साथ गूगल का सेवन करे अथवा वला, पुनर्नवा, एरण्ड, बृहती, दोनों छोटे-बडे गोखरू, हींग और लवण के द्वारा साधित का पान करें तो शीध्र ही वायु के रोग का अपहरण हो जाता है। कार्षिक, पिप्पली मूल, पाँचों प्रकार के नमक, पीपल, चित्रक, सोंठ, त्रिफला, त्रिवृता, वच, दो क्षार, शीतलन्दती, स्वर्ण क्षीरी, विषाणिका इन सबकी कोल प्रमाण वाली बटी बनावें और उसे साबीर के साथ ग्रहण करें तो वातज रोगों को लाभ हेाता है। शोध व पाक में तिव्रता जबकि उदरादिक में बहुत बढ जावे तो लेना चाहिए। क्षीर वर्षाभ, दारू और नागर के साथ लेने पर शोथ (सूजन) के हरण करने में अच्छा काम किया करता है। अर्क, वर्षा, भूनिम्ब से सेक करने पर शोथ में लाभ होता है।

अर्श की चिकित्सा- पलाश के व्योष गर्भ को तिगुने भस्म के तल में साधित करके घृत पीवे तो अर्श का पतन हो जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

गण्डमाल की औषधि- विष्कक्सेन, अब्ज, निर्गुण्डी से साधित लवण, किञ्ज अनल, सिन्धूत्रास्नाग्र क्षीर दारू से सिद्ध चतुर्गण तेल अथवा जल के साथ कटुद्रव्य का तेल गण्डमाला का अपहरण करने वाला है और अभ्यंग करने से गल को नष्ट करता है।

क्षय रोग की औषधि- शठीकुनाग वलय का क्वाथ क्षीर रस से युक्त पयस्या पिप्पली और वासा (अडूसा) का कल्क सिद्ध किया हुआ क्षय में लाभ करता है।

गुल्म, उदर, शूलादि की चिकित्सा- वच, विड, अभया, सोंठ, हींग,

कुष्ठ, अग्नि दीप्यकों को, दो-तीन, छ: वार, एक, सात और पाँच क्रम से भाग लेकर चूर्ण बनावे और उसको ग्रहण करें तो गुल्म, उदर शूल कास को नष्ट करता है। पाठा, निकुम्भ, त्रिकुटी (सौंठ, मिर्च और पीपल) और त्रिफला को अग्नि सुसाधित करके मूल के साथ चूर्ण करके गुटिका बना लें। इसके सेवन से गुल्म, प्लीहा आदि का मर्दन करने वाली होती है। वासा, नीम और पटोल पत्र तथा त्रिफला बात और पित्त का नाशक है।

अतिसार की औषधि- बिल्व (वेल), आम्र, वात की, पाठा, सौंठ और मोचरस सम भाग पीने से गुड और तक्र (मट्ठा) के साथ दुर्जय अतिसार को भी बन्द कर देते हैं।

गुदभ्रंश की चिकित्सा- चांगेरी (खट्टी त्रिपत्ती) कोल, दधि, अम्बु, नागर क्षार से युक्त क्वाथ करके घृत के सहित पीना चाहिये इससे गृदभ्रंश के रोग का नाश होता है।

स्त्री प्रदत की चिकित्सा- सभंगा लोध्र, नीलोप्पल, इनको क्षीर के साथ लेने से स्त्रियों के प्रदर का नाश हो जाता है।

गर्भपात का निरोध

बीजं कौरण्टकं चापि मधुकं श्वेतचंदनम् ॥ 69
पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान्।
द्रवमाणेषु गर्भेषु गर्भेस्यापनमुत्तमम् ॥ 60

कौरण्टकबीज, मधुक, श्वेत चन्दन, पद्मोत्पल का मूल, मधुक, शर्करा और तिलों को गर्भों के द्रव्यमान होने पर सेवन करने से गर्भ की स्थापना उत्तम रीति से हो जाती है।

शिरोवेदना का नाश- देवदारू, नमक, कुष्ठ, नलद विश्वभेद इनको काँजी के साथ भली-भाँति पीसकर तेल के सहित लेप करने से शिरोवेदना का नाश होता है।

कर्ण पीडा का नाश- थोडा गर्म सिन्धूत्थ को वस्त्र से छान कर कान में डालने से कर्ण पीड का नाश होता है।

तिमिर का नाश- त्रिफला के साथ घृत तिमिर का नाश होता है।

दृष्टि शक्ति आदि कारक- त्रिफला, व्योष, सिन्धूत्व के द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत मनुष्य पीवे तो चक्षुष्य, भेदन, हृद्य दीपन तथा कफों के रोगों का नाशक होता है।

दिन रात्रिअन्ध की चिकित्सा- नीलोत्पल का किंजल्क गौ के गोबर के

रस से युक्त गुटिकाञ्जन दिन रात्रन्ध के लिये लाभप्रद है।

सर्वरोग हर- पथ्या, सैन्धव और कृष्ण का चूर्ण उष्ण जल के साथ पीवें तो नाराच संज्ञा वाला विरेक समस्त रोगों का नाशक एवं श्रेष्ठ होता है।

मृत्युंजयकल्प- एक पल आधापल या एक कर्ष त्रिफला तथा खांकला को और बिल्व तैल के नस्य को एक मास तक सेवन करने से पंचशती की आयु वाला कवि होता है। रोग अपमृत्यु और बली के ऊपर विजय पाता है। तिल भल्लातक और पंचांग वाकुची का चूर्ण को खदिर के क्राथ के सेवन से कुष्ठ पर जय पाता है। नील कुरूण्ट के चूर्ण को दूध अथवा मधूर रस के साथ सेवन से और खाँड से युक्त दूध पीने से मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाला हो जाता है। चाशनी, घृत और सौंठ एक पल प्रात: काल में सेवन करने वाला मृत्यु को जीतने वाला हो जाता हैं। माण्डूकी के चूर्ण को दूध के सेवन से वली व पलित को जीत लेता है।

पहिले चित्रक, शुंठि, विंडङ्ग, भृंगराज, बला, निम्ब के पंचक, खादिर, निर्गुण्डी, कण्टकारी, वासा और वर्षा भू इनसे अथवा इनके रसों से भावित कर वाटिका बना लेवे अथवा चूर्ण को घृत, मधूर रस, गुड आदि तथा जल के साथ ''ॐ ह्रूंस:'' इस मन्त्र के द्वरा अभिमन्त्रित करे तो यह योगराज होता है तथा मृत संजीवन कल्प होता है जो रोगों को और मृत्यु को जीत लेता है। ये कल्पों के सागर है।(अग्नि पु.भा.2)

-: स्वास्थ्यामृतम् :-

''पूर्वकृत पापं व्याधि रूपेण पीड्येते'' के अनुसार 1) पूर्वजन्म कृत से कर्मजा रोग होता है। यथा कुछ गर्भावस्था के रोग (विकलाङ्गता आदि), वंशानुगत रोग आदि 2) वर्तमान जीवन में भी अभक्ष भक्षण रूपी पाप (मांस, मद्य, तम्बाखू, अयोग्य भोजन) से भी बुद्धिभ्रष्ट, कैंसर आदि रोग होते हैं। 3) क्रोध, चिंता, अन्याय, भ्रष्टाचार, तनाव आदि पाप से भी फोबिया, रक्तचाप, शिर दर्द, अनिद्रा आदि रोग होते हैं। अत: पाप को दूर करने से तथा पाप से दूर रहने से यथा योग्य रोग भी दूर होते हैं।

परिच्छेद-15

तम्बाखू एक अनर्थ अनेक

(तम्बाखू स्व-पर भाव-द्रव्य हिंसा कारक, स्व-पर रोग कारक, मृदा-जल-वायु प्रदूषणकारी, तन-मन-धन के नाशक होने से तम्बाखू की खेती करने वाले, तम्बाखू से बीडी, गुटखा आदि बनाने वाले, बेचने वाले, प्रचार-प्रसार करने वाले, सेवन करने वाले, उनके सम्पर्क में आने वाले, उनके बच्चे-परिवार आदि भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हिंसक या रोगी या प्रदूषण फैलाने वाले हैं। अत: वे सब स्व-पर दोषों के लिए उत्तरदायी, अपराधी है।)

पढने में, सुनने में आता है कि तम्बाखू सेवन विभिन्न रोग कारक है, परंतु मेरे अनुभव के अनुसार यह अपूर्ण सत्य है। इस शोधपूर्ण लेख में मैंने (आ. कनकनंदी) जो देखा, सुना, पढा, अनुभव किया उसके अनुसार इसके विभिन्न हानियों के बारे में कुछ प्रकाश डाल रहा हूँ।

1) तम्बाखू स्व-पर हिंसाकारक व प्रदूषण कारी - कर्नाटक, महाराष्ट्र में तम्बाखू की खेती में जाकर मैंने जो महीनों के परीक्षण-निरीक्षण में पाया वह बहुत ही हिंसक एवं प्रदूषण कारी है जिसका वर्णन प्राय: मुझे किसी भी पुस्तक एवं लेख में पढने को नहीं मिला। तम्बाखू सेवन से जो हानियाँ हैं जिसका वर्णन प्राय: लेख, पुस्तकों में होता है उससे भी अधिक हानियाँ उसकी खेती में होती है। उसकी ओर कम ही वैज्ञानिक, डाक्टर, नशामुक्ति वालों की दृष्टि गई है। इसलिए उसका शोध-बोध, प्रचार-प्रसार तथा प्रतिबन्ध/निषेध कम ही हुआ है। जड को नष्ट किए बिना केवल प्रशाखाओं एवं पत्तियों को तोडने के समान काम हो रहा है।

इसकी खेती कम पानी के प्रयोग से होने से, पशु-पक्षी, गाय, भैसा, बकरा-बकरी यहाँ तक कि गधे भी तम्बाखू की फसल को नहीं खाते हैं (विषाक्त होने से चार पैर वाले पशु नहीं खाते हैं परंतु स्वयं को श्रेष्ठ मानने वाले दो पैर वाले पशु (नरपिशाच) खाते हैं) तथा अर्थकारी होने से इसकी खेती किसान अधिक करते हैं। इसकी जब तम्बाखू योग्य बडी-बडी पत्तियाँ आती हैं उन प्रत्येक पत्तियों में सैकडो छोटे-छोटे कीडे जन्म लेते हैं जो उन पत्तियों को खाकर जीवित रहते हैं। ध्यान से देखने से खाली आँखों से भी वे चलते-फिरते दिखाई देते हैं। इन कीडों को मारने के लिए आठ-दस दिनों के अन्तराल में चार-पांच बार विषाक्त रसायन का स्प्रे (छिडकाव) किया जाता है। एक पेड में सात

आठ पत्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार केवल एक पत्ति की रक्षा के लिए हजारों कीडों को मारा जाता है। इतना ही नहीं उस विषाक्त रसायन से जमीन के जीव-जन्तु भी करोडों की संख्या में मरते हैं और वह विषाक्त पानी जिस नदी, नाला, तालाब में जाता है वहाँ के भी करोडों की संख्या में मछली, मेंढक, जीव-जन्तु मरते हैं। उसका पानी पीने वाले पशु-पक्षी, मनुष्य भी रोगी होते हैं, मरते भी हैं। इसके साथ-साथ मृदा प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण होता है। तम्बाखू में जो निकोटीन आदि चार हजार विषाक्त तत्व हैं; तथा विषाक्त रसायन के कारण उस खेत में पशु-पक्षी यहाँ तक कि विषधर सर्प भी नहीं जाते हैं परंतु सर्वाङ्ग विषधर मनुष्य उसे शौक से, फैशन से, चाव से खाता है। इसलिए तो मेरी दृष्टि में **''मनुष्य विश्व का अविश्वसनीय सत्य विचित्र प्राणी''** है। मैंने इसके (तम्बाखू) प्रवचन करके अनेक व्यक्तियों को तम्बाखू की खेती नहीं करने का नियम दिया जिससे सैकडों हेक्टरों में खेती होना बंद हुआ।

पत्ति के परिपक्व होने पर उसे तोडकर सुखाते हैं और कुछ अंश में सूखने पर उसे संग्रह करके रखते हैं। उस संग्रहीत स्थान में रहने वालो, सोने वालों को भी विभिन्न रोग होते हैं। तम्बाखू से बीडी, गुटखा, जर्दा आदि जो बनाते है उन्हें भी विभिन्न रोग होते हैं। जो तम्बाखू सेवन करते हैं और जो उनके आसपास रहते हैं उन्हें भी निम्नोक्त रोग होते हैं

2) तम्बाखू सेवन आत्महत्या - तम्बाखू से विभिन्न रोग - तम्बाखू में तथा तम्बाखू उत्पादन में (गुटखा, बिडी, सिगरेट, पानमसाला) चार हजार विषाक्त तत्व होते हैं जिनमें मुख्य निकोटीन आदि ग्यारह विषाक्त तत्व होते हैं। जिसके सेवन से और सेवन करने वालों के सम्पर्क से तथा उसके विषाक्त तत्व के सम्पर्क में आने वालों को वात-स्फीती (एम्फीजीमा), हृदय रोग, खाँसी, दमा, फेफडों का कैंसर आदि विभिन्न रोग होते हैं। तम्बाखू का धूआँ श्वास नली के अन्दर रह रहे सूक्ष्म बालों (रोम) को आघात पहुँचाकर संवेदन शून्य कर देता है। जिससे वे धूलि कण युक्त श्लेष्मा के ऊपर धकेलने में असक्षम हो जाते हैं तथा उसे स्वर यंत्र द्वारा बाहर निकालने की क्रिया बंद हो जाती है। निकोटीन में केन्द्रिय नाडी तंत्र को उत्तेजित करने की अद्भूत क्षमता है। ये ही तत्व हृदय रोग को बढाने में सहयोगी बनते हैं। एल.एस.डी का अणु रासायनिक दृष्टि से सेरोटीनीन नामक तंत्रिका-संचारी (न्यूरोन-ट्रान्समिटर) के साथ अद्भूत सादृश्य रखता है, जिससे वह मस्तिष्कीय कोशिकाओं के कार्य कलापों के विक्षेप पैदा करता है। इससे पैदा होने वाले भ्रम अति आह्लादक या अति भयानक स्वप्न जैसे होता है। जब व्यक्ति नशे की स्थिति में होता है तब उनकी विवेक शक्ति विकृत हो जाती है जो उनके स्वयं के लिए तथा अन्य लोगों के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इन पदार्थों का सेवन स्वल्प

कालीन स्मृति को क्षीण करता है, अवबोध शक्ति को मन्द तथा निर्णायक शक्ति में विपर्यय करता है, व्यक्ति के मस्तिष्क में आतङ्क और किंकर्तव्यविमूढता की प्रतिक्रियायें पैदा करता है।

I) छठे दशक से अबतक असमायिक मृत्यु का सबसे बडा कारण है तम्बाखू सेवन। प्रथम विश्व युद्ध के चार सालों में जितने लोगों की मृत्यु हुई उतने लोग तो तम्बाखू से उत्पन्न रोगों से सिर्फ देढ वर्ष में होती हैं।

II) एड्स से पिछले एक दशक से संसार में जितने लोगों की मृत्यु हुई उतनी मृत्यु तम्बाखू के रोग से एक माह में होती है। केवल भारत में रोजाना तम्बाखू के कारण 3000 लोग मरते हैं जो कि सडक दुर्घटना से 20 गुणा व हत्याओं से 21 गुणा अधिक हैं।

III) मुँह, गले व फेफडे के हर दस रोगियों में से 9 व्यक्ति तमबाखू सेवन करने वाले होते हैं।

IV) तम्बाखू सेवन से हृदय रोग की सम्भावना 15 गुणा अधिक होती है।

V) क्रॉनिक ब्रांकाइटिस व एम्फाइजीमा जैसे खतरनाक रोगों के भी दस में से 9 रोगी धूम्रपान करने वाले व्यक्ति होते हैं। इस रोग से ग्रसित 30 प्रतिशत लोग भारत के होते हैं।

VI) तम्बाखू सेवन से ब्रेन हेमरेज, डायबिटीज, चेहरे पर झुर्रियाँ, हृदयघात, उच्च रक्तचाप, भोजन में रूचि कम होना आदि रोग होने की सम्भावना बढ जाती है।

VII) गर्भावस्था में तम्बाखू सेवन से गर्भ के बच्चे पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पडता है। यदि गर्भस्थ बच्चा लडका है तो कुप्रभाव अधिक पडता है।

VIII) यदि कोई व्यक्ति 40 सिगरेट पीता है, तब उसके बगल में बैठा ऐसा व्यक्ति जो सिगरेट नहीं पीता, 3 सिगारेट के बराबर धुआँ शरीर में ग्रहण करता है।

IX) बीडी व सिगरेट के धुअें में पांच प्रतिशत घातक गैस कार्बन मोनोक्साईड होती है, जो कि खून के आवश्यक तत्व हिमोग्लोबीन से मिलकर कार्बोक्सि-हिमोग्लोबिन नामक विषैला पदार्थ बनाती है। इससे प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होती है तथा शरीर में पॉलिसाइथेमिया की बीमारी हो जाती है और नर्वस सिस्टम की कार्य क्षमता में विकार आ जाता है। धूम्रपान करने वाले व्यक्ति की शारीरिक क्षमता में भी कमी आती है और थोडा परिश्रम करने के पश्चात् ही ऐसे लोगों को थकान आने लगती है।

X) एक सिगरेट पीने/धूम्रपान करने वाले व्यक्ति का जीवन पांच मिनट कम होता है, अर्थात् कोई व्यक्ति बारह सिगरेट रोजाना पीता है, तब उसकी उम्र एक घंटा प्रतिदिन घटती है।

XI) एक पैकेट सिगरेट पीने वाला व्यक्ति यदि सिगरेट के बजाय इस धन को लगातार

25 वर्ष तक बैंक में संचित करता रहे तो इस अवधि के उपरान्त 3.5 लाख रुपये बैंक में जमा होंगे। जब कि 25 वर्ष तक धूम्रपान करते रहने के शरीर को स्वस्थ रखने हेतु 500-1000 रूपये प्रतिमाह चिकित्सा पर खर्च करने पडते हैं।

XII) धूम्रपान करने से स्वास्थ्य ही नहीं प्रभावित होता है अपितु याददाश्त भी कमजोर होती है। यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूकेसल में किए गए शोध से पता चला है कि अधिक सिगरेट पीने से याददाश्त कम हो जाती है और व्यक्ति में भूलने की प्रवृत्ति बढ जाती है। शोध के अनुसार, एक हफ्ते में 15 से अधिक सिगरेट पीने से लोग भुलक्कड हो जाते हैं और इन लोगों को याददाश्त संबन्धी और भी समस्याएं आसानी से अपना शिकार बना लेती है। आठ सौ लोगों पर किए गए शोध अध्ययन से पता चला कि धूम्रपान करने वाले लोगों में याददाश्त संबंधी समस्यायें अपेक्षाकृत 22 प्रतिशत तक अधिक पाई जाती हैं। अध्ययनकर्ताओं ने यह भी बताया है कि तम्बाखू में उपस्थित निकोटीन के कारण मस्तिष्क का याददाश्त वाला भाग प्रभावित होता है और इस कारण याददाश्त कमजोर होने लगती है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि स्वयं को बुद्धिमान, प्रगतिशील, आधुनिक, शौकिन मानने वाला व्यक्ति रूपया देकर रोग एवं आत्महत्या को खरीदता है। विषादि सेवन से जो आत्महत्या होती है वह तो कुछ समय में ही हो जाती है परंतु तम्बाखू सेवन से व्यक्ति आत्महत्या धीरे-धीरे, घुट-घुट कर करता हैं। हर सौ धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों में से 25% व्यक्ति की मृत्यु धूम्रपान जनित रोग से होती है।

धूम्रपान एक प्रकार से अपने शरीर के अङ्गों से की गई क्रूर हिंसा के समान है। फेफडे के ऊतक बीडी-सिगरेट के धुऐं में घुट कर नष्ट हो जाते हैं। जो बचते हैं उन पर घाव हो जाते हैं और कालिख जमती है। जिस प्रकार लकडी जलाने वाले चूल्हे के रसोई में 20-25 साल में कालिख की मोटी परत जम जाती है, उसी प्रकार फेफडों में भी सिगरेट-बीडी के धुँए से कालिख जम जाती है जो वातावरण से ली गयी ऑक्सीजन को फेफडों के द्वारा शरीर में प्रवेश के छिद्रों को बन्द कर देती है तथा फेफडों में नाजुक ऊतक जल कर नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में रोगी को श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है।

3) तम्बाखू सेवन के विभिन्न कारण – मनुष्य एक अनुकरणशील, सामाजिक प्राणी है और अधिकांश मनुष्य अन्धानुकरण शील हैं। व्यक्ति दूसरों की देखा देखी, कुसङ्गती से तम्बाखू सेवन शौक से प्रारम्भ करता है। धीरे-धीरे यह शौक आदत में परिणमन हो जाता है। तम्बाखू सेवन एक सामाजिक कुरिवाज भी है। घर आये मेहमान के लिए शादी-विवाहादि में नशीली वस्तुओं का मनुहार करते हैं। और जो इसका प्रयोग नहीं

करते हैं उससे जबरदस्ती करते हैं, स्वीकार नहीं करने पर नाराज भी होते हैं। इस सामाजिक कुरीति के कारण भी कुछ इसे सेवन करते हैं। कुछ तो स्वयं को आधुनिक-बोल्ड ''up to date'' धनी आदि अहम् प्रवृत्ति की संतुष्टि, अभिव्यक्ति, पुष्टि के लिए भी नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। कुछ उत्सुकता, जिज्ञासा, प्रयोग करने की लालसा, दोस्तों आदि को प्रभावित करने के लिए, आराम करते समय, काम करते समय मन की एकाग्रता के लिए, दांत के दर्द, बलगम की रुकावट, गैस-कब्ज आदि को दूर करने के लिए भी प्रयोग करते हैं। कुछ विज्ञापनों के कारण तो कुछ नट-नटी (हीरो-हीरोइन) के अंधभक्त उनका अंधानुकरण करते हुए स्वयं को हीरो-हीरोइन सिद्ध करने के लिए सेवन करते हैं।

4) तम्बाखू निषेध के उपाय - 1. सबसे पहले तम्बाखू की खेती, क्रय-विक्रय, तम्बाखू से बीडी-सिगरेट, गुटखा, पानमसाला आदि का निर्माण क्रय-विक्रय, टी.वी., समाचार पत्र, होर्डिंग आदि में विज्ञापन, हीरो-हीरोइन द्वारा सिनेमा, टी.वी. प्रोग्राम में इसके प्रयोग को रोकना अनिवार्य है। भारत में नशामुक्ति से लेकर राष्ट्र निर्माण के जो कार्य होते हैं वे सब जड को छोडकर पत्ती को सिञ्चने के समान तुच्छ कार्य होते हैं। सरकार, कानून, समाज, नशामुक्ति आन्दोलन, साधुसंतों के प्रवचन-प्रोग्राम आदि में **''नशीली वस्तु मत खाओ''** रूपी मौखिक या कागजी घोडे तो दौडायेंगे परंतु तम्बाखू की खेती, उत्पादन, क्रय-विक्रय आदि करेंगे, करायेंगे या उस उत्पादन से प्राप्त धन का उपयोग करेंगे।

2. **''प्रक्षालनात् श्रेय दूरात् परिवर्जनम्''** अर्थात् मल को शरीर में लगाकर धोने से अच्छा है उसे दूर से ही त्याग देना। इस न्याय से सेवन करके त्याग करने से श्रेष्ठ है उसे दूर से ही त्याग देना। दुर्भाग्य से सेवन प्रारम्भ हो गया तो दृढइच्छाशक्ति से उसे तत्काल त्याग कर देना चाहिए तथा मानसिक संतुष्टि के लिए सत्साहित्यों का अध्ययन, साधु-संत, सत्संगति करना; सौंफ, इलायची, लौंग आदि का सेवन करना चाहिए। इच्छाशक्ति को बढाने के लिए महापुरुषों के द्वारा संपादित बडे-बडे कार्यों को, भीष्मप्रतिज्ञाओं को स्मरण करते हुए स्व में निहित शक्तिओं को जागृत करना चाहिए। साथ ही साथ नशीली वस्तुओं के विभिन्न हानियों के बारे में सोचे कि इससे क्या-क्या हानियाँ है। सोचे कि इससे तो व्यक्ति तन-मन-धन, आध्यात्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, व्यवहारिक दृष्टि से रोगी, गरीब, भिखारी, मृतक के समान बन जाता है। मराठी में एक नीति है -

''मागायचि असेल जर भीक, तर तम्बाखू खायला शीक''

अर्थात् भीख मांगना (भीखारी बनना) चाहते हो तो तम्बाखू खाना सीखो।